

माँ! तू कितनी महान...

सचमुच महान हैं वे माताएँ,
जो अपनी संतानों में
भगवद्भक्ति, भगवत्प्राप्ति
एवं विद्व-मांगल्य के
संस्कारों के बीज बोती हैं।

पूज्य संत
श्री आशारामजी बापू



माँ यशोदा एवं श्रीकृष्ण



माँ कौसल्या एवं रामजी



माँ मदालसा एवं पुत्र



माँ सीता एवं लव-कुश



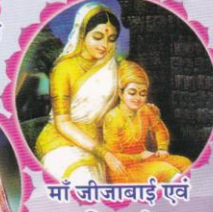
माँ अंजना एवं
हनुमानजी



माँ लक्ष्मणी देवी एवं
विनोबाजी



माँ शकुंतला एवं भरत



माँ जीजाबाई एवं
शिवाजी



श्री माँ महेंगीबाजी
की गोद में पूज्य बापूजी

माँ तू कितनी महान



हे भारत की नारी ! अपनी महिमा में जाग

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू का संदेश

हे भारत की माताओ, बेटियो ! तुम अपनी महिमा में जागो। हिम्मत करो। सिनेमा (चलचित्र) देखकर या 'डिस्को' नृत्य करके अपनी जीवनशक्ति नष्ट करने वालों को वह भले मुबारक हो किंतु तुम तो भारत की शान हो। हे माताओ-बहनो-बेटियो ! तुम फिर से अपनी आध्यात्मिक शक्ति जगाओ। यहाँ तक कि ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी माँ अनसूया के द्वार पर भिक्षा माँगने पधारे थे। जो महानता अनसूया में थी वही महानता बीजरूप में तुम्हारे अंदर भी छुपी है। हे भारत की नारी ! तू तो महान है ! तुझमें नारायण का स्वरूप छिपा है।

कई स्त्रियों ने ऋषिपद पाया है। मदालसा, जीजाबाई, रानी चूड़ाला, दीर्घतपा की पत्नी जैसी आदर्श चरित्रवाली कई स्त्रियाँ हो गयीं। गार्गी और सुलभा जैसी स्त्रियाँ भरी सभा में विद्वानों से शास्त्रार्थ करती थीं।

हे भारत की नारी ! तू अपनी शान को फिर से बुलंद कर ! फिल्मों की, पाश्चात्य जगत के तुच्छ नाच-गान और फैशन की गुलाम मत हो वरन् अपनी महिमा को पहचान।

मातृशक्ति की महिमा का परिचय देनेवाले संत
श्री आशारामजी बापू के अमृतवचनों, संस्कारप्रद कुंजियों एवं
सत्साहित्य से संकलित प्रेरक प्रसंगों से सुसज्ज साहित्य-पुष्प...

माँ ! तू कितनी महान...

Maa ! Tu Kitni Mahan...

भाषा : हिन्दी



प्राप्ति-स्थान : सभी संत श्री आशारामजी आश्रम व समितियों के सेवाकेन्द्र।
संत श्री आशारामजी आश्रम, संत श्री आशारामजी बापू आश्रम मार्ग,
साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५. दूरभाष : (०७९) ३९८७७७३२.
सूरत, दूरभाष : (०२६१) २७७२२०१/२.

नई दिल्ली, दूरभाष : (०११) २५७२९३३८, २५७६४१६१.
गोरेगाँव (पूर्व), मुंबई-४०००६३. दूरभाष : (०२२) २६८६४१४३.

Visit : www.ashram.org
For online purchases : www.ashramstore.com

प्रकाशन-स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चर्स, मोटेरा,
साबरमती, अहमदाबाद-३८०००५ (गुजरात)
मुद्रण-स्थल : हरि ॐ मैन्युफेक्चर्स, कुंजा मतरालियों,
पोंटा साहिब, सिरमौर (हि.प्र.)-१७३०२५
पृष्ठ संख्या : ९६ आकार : १३५ मि.मी. X २१० मि.मी.
प्रथम संस्करण : १०,००० प्रतियाँ

मूल्य : ₹ १५
(पन्द्रह रुपये)

प्रस्तावना

मानव की शिक्षा जन्म से नहीं बल्कि गर्भावस्था से ही शुरू होती है और यह भी प्रमाणित एवं अनुभूत सत्य है कि जीवन के उत्तरकाल की अपेक्षा पूर्वकाल में मानव के चित्त पर पड़े संस्कार अधिकाधिक प्रभाव दिखाते हैं एवं जीवन में दीर्घकाल तक देखे जाते हैं। उसमें भी गर्भावस्था एवं बाल्यकाल में (14 साल तक) दिये गये संस्कार तो सर्वाधिक प्रभावशाली होते हैं एवं व्यक्ति के जीवनभर अपना प्रभाव दिखाते रहते हैं। ये उसके लिये जीवनभर की एक पूँजी बन जाते हैं। भारत के ऋषि-मुनियों ने शास्त्रों में यह तथ्य हजारों-लाखों वर्ष पहले ही लिख रखा है। हमारा गौरवशाली इतिहास 'विष्णु पुराण' में वर्णित प्रह्लाद, 'महाभारत' में वर्णित अभिमन्यु आदि अनेकानेक चरित्रों से इसे सुस्पष्ट करता है। आज का विज्ञान भी अब इसे स्वीकार कर रहा है।

बच्चों के विकास में सुसंस्कार महती भूमिका निभाते हैं। माँ मात्र बालक की ही नहीं बल्कि उसके संस्कारों की भी जन्मदात्री है। बाल्यवास्था में बच्चों को जैसे संस्कार दिये जाते हैं, आगे चलकर वे वैसे ही बनते हैं। महापुरुषों की महानता में प्रायः उनकी माताओं का भी अमूल्य योगदान पाया जाता है। इसीलिए बचपन से ही निर्भयता, साहस, भगवद्भक्ति, आत्मबल के संस्कार दिये जायें तो ये संस्कार बच्चों को अवश्य महानता की ऊँचाइयों तक पहुँचा देंगे।

बालक को सुसंस्कारी बनाने में माता-पिता की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वे मानो एक प्रकार के माली हैं। इन दोनों में से भी माता का प्रभाव अधिक होता है क्योंकि गर्भ से ही संतान पर माता के खान-पान, आचार-विचार आदि का प्रभाव पड़ता है। माँ संतान में बचपन से ही सुसंस्कारों की नींव डाल सकती है। इस पुस्तक में ऐसे एक दो नहीं, कई उदाहरण हैं जिनमें मातृशक्ति की महिमा का परिचय मिलता है।

वर्तमान समय में पाश्चात्य कल्चर के दुष्प्रभाव से हमारी संस्कृति की संस्कार-सरिता पर कुछ काई-सी छाया नज़र आ रही है, ऐसे में माताओं-बहनों के लिए पूर्व की महान माताओं की शिक्षाएँ एवं आचरण आदर्शरूप सिद्ध होंगे। महान माताओं द्वारा अपनी संतानों में किये गये सुसंस्कार-सिंचन के प्रसंगों आदि से ओतप्रोत यह पुस्तक आपके करकमलों में देते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। महिलाएँ इस पुस्तक का लाभ लें तथा महिला उत्थान मंडल द्वारा चलाये जा रहे 'दिव्य शिशु संस्कार' वर्गों का भी लाभ लें तो सोने में सुहागा जैसा लाभ होगा।

अनुक्रमणिका

1. मातृभक्ति की महिमा
2. अनंत-अनंत प्रणाम हैं उन पूजनीया माताओं एवं सद्गुरुओं को....
3. वैर के नहीं, भगवद्भक्ति के संस्कार दें
4. बालक शिवराम कैसे बने महात्मा तैलंग स्वामी ?
कैसे जगी गुरु प्राप्ति की तड़प ? वैराग्यमय जीवन और पूर्णता की प्राप्ति
5. संत श्री आशाराम जी बापू को माँ द्वारा बचपन में मिले प्रभुप्रीति के संस्कार
ब्राह्म मुहूर्त में उठने व भगवद्भजन के संस्कार, माँ ने बोये प्रभुप्रीति, प्रभुरस के बीज,
माँ ने समझायी भगवद्-शरणागति की महता।
6. साँई श्री लीलाशाह जी की अनपढ़ दादी माँ का कैसा प्रभाव !
7. माता जीजाबाई ने पुत्र शिवाजी में फूँका अदम्य प्राणबल
माँ ने किया सद्गुणों का सिंचन, गुरु कृपा से हुआ आत्मसाक्षात्कार
8. क्या किसी स्कूल कालेज में मुझे ये संस्कार मिल सकते थे ?
माँ ने दी ब्रह्मचर्य और देश-धर्म की सेवा की शिक्षा, दिव्य संस्कार-सिंचन की अनोखी
रीति, माँ की प्रेमाभक्ति का रंग बच्चे को भी लगा, मानवधर्म की शिक्षा देकर माँ ने बड़ा उपकार
किया, 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा', दही जमाने वाला भी भगवान !

9. माँ के संस्कारों एवं गुरुकृपा से नरेन्द्र से बने स्वामी विवेकानंद
माँ का ऋण कैसा ?
 10. बालक तीर्थराम को बुआ से मिले संस्कार
 11. बच्चों को संस्कार दें
 12. बालक रविदास को माँ से मिली संत-सेवा की शिक्षा
मैंने सच्चा सौदा किया है, जब पूरा सामान दे डाला
 13. माँ बनो तो आदर्श मदालसा जैसी
 14. माँ सुमित्रा की लक्ष्मण जी को अनुपम सीख
 15. हनुमान जी को माँ अंजना से मिली अनुपम शिक्षा
 16. उपमन्यु को माँ ने बताया सर्व मनोकामनापूर्ति का उपाय
 17. श्री आनंदमयी माँ पर पड़ा माता-पिता के आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव
गुरु के प्रति सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण, माँ की स्वरूपनिष्ठा तथा साधना का
समरसूत्र, भगवान को पाने का सबसे सीधा रास्ता
 18. मीराबाई को मिले भक्ति के संस्कार, प्रकट किया ईश्वर साकार
एक बेटी के कितने बींद ?, 'मेरे गुरु कोन ?'
 19. गवरी बाई की माँ थी सयानी, बना दिया उसे गिरधर की दीवानी
सद्गुरु की प्राप्ति एवं साधना में तीव्र उन्नति, गवरीबाई की अनन्य भक्ति देख
राजा हुआ नतमस्तक, सद्गुरु के ज्ञान से अज्ञान-आवरण हटा
 20. घायल सालबेग को थी मौत की चाह, माँ ने दिखायी भक्ति की राह
ऐसे गणितज्ञ और वैज्ञानिक की महानता के पीछे किनकी शिक्षा प्रेरणा ?
 21. महान गणितज्ञ रामानुजन
 22. विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु
 23. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की माँ ने माँगे तीन गहने
- अणुक्रमणिका**
24. माँ की परवरिश शिशु को बुद्धिमान बनाती है
कैसे थे शहीदों व देशप्रेमियों के माताओं के संस्कार ?
 25. मेरी माता जी तथा गुरुदेव की कृपा
 26. माँ प्रभावती की सुशिक्षा ने देश को दिये नेता जी सुभाषचन्द्र बोस
 27. काश ! मेरी कोख ने एक ओर भगतसिंह को जन्म दिया होता
 28. माँ के अनुशासन ने गढ़ा लाला लाजपतराय का जीवन
 29. ब्रह्मदत्त को माँ ने देशद्रोही होने से बचाया
 30. निवेदिता झुक पड़ीं चाफेकर बंधुओं की माँ के चरणों में !

31. [देशसेवा हेतु माँ ने सरदार पटेल को दी सहर्ष स्वीकृति](#)
32. [मालवीय जी की मातृनिष्ठा](#)
33. [बालक चरित्रवान कैसे बनें ? - भगवत्पाद साँई श्री लीलाशाह जी महाराज](#)
34. [माँ के ऋण से मुक्त होना सम्भव नहीं !](#)
35. [बच्चों को संस्कारित करने के सरल तरीके](#)

[बच्चों को विश्वास में लें, खान-पान में ज्यादा लाड़ न लड़ायें.... अच्छी भावनाओं का पोषण करें, स्वयं पर नियन्त्रण पाने की ये युक्तियाँ सिखायें, बच्चे बहुत परेशान करते हों तो क्या करें ?, बच्चों की गंदी आदतें कैसे दूर करें ?, इस पद्धति से संतान अवश्य बनेगी ओजस्वी तेजस्वी](#)

36. [प्यार से पोषण करें सद्गुणों का](#)
37. [बच्चों के जीवन में लगाओ चार चाँद](#)
38. [बाबा आमटे की माँ ने खिलौने के माध्यम से दिये संस्कार](#)
39. [संस्कारों के लिए सरकारी कोष का सदुपयोग](#)
40. [बच्चों में बुराई नहीं होती](#)
41. [भक्तिदात्री पाँच महान नारियाँ](#)
42. [माँ की सीख से मोहन को हुए भगवान के दर्शन](#)
43. [सत्संग से ही संस्कारों की प्राप्ति - श्री उडिया बाबा जी](#)
44. [अपनी संतानों को महान बनाने के लिए](#)
45. [माता-पिता व सद्गुरु की महत्ता](#)
46. [बच्चों में अच्छे संस्कार डालना यह हम सबका कर्तव्य है](#)

[अपने व बच्चों के जीवन को सत्संग-ज्ञान से सम्पन्न बनायें, जहरीले संस्कारों से बचायें, धर्म-संस्कृति के प्रति निष्ठा जगायें, यह पूँजी आपके लाइलों को हर क्षेत्र में सफल बनायेगी](#)

मातृशक्ति की महिमा

'ब्रह्मवैवर्त पुराण' (गणपति खंड, अध्याय 40) में आया है कि 'जन्मदाता से भी अन्नदाता पिता श्रेष्ठ है। इनसे भी सौ गुनी श्रेष्ठ और वंदनीया माता है क्योंकि वह गर्भधारण तथा पोषण करती है।'

भगवान श्रीरामचन्द्र जी कहते हैं-

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

अर्थात् माता तथा मातृभूमि की गरिमा स्वर्ग से भी बड़ी है।

मातृशक्ति की महिमा अपार है। वे माताएँ ही तो थीं, जिन्होंने अपनी उँगली पकड़ाकर जगदाधार को चलना सिखाया ! जगत के पालक को दूध पिलाया और उस परम प्रेमदाता को गले से लगाकर वात्सल्य लुटाया ! कौसल्या जी एक माँ ही थीं, जिन्होंने भगवान राम को जन्म दिया ! यशोदाजी एक माँ ही तो थीं, जिनकी गोद में भगवान कृष्ण खेले ! देवहूति भी एक माँ ही थीं, जिन्होंने भगवान कपिल को बोलना-चलना सिखाया !

माता को शिशु का प्रथम गुरु कहा गया है। माता वह किसान है जो बालक की हृदयरूपी भूमि पर सुसंस्कारों के बीज बोता है। ये ही बीज आगे चलकर विशाल वृक्षों के रूप में परिणत होते हैं। माता सुनीति से सुसंस्कार एवं सत्प्रेरणा पाकर बालक ध्रुव ने अटल पदवी प्राप्त की। दैत्यराज हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधू की भक्तिनिष्ठा के प्रभाव से राक्षस कुल में भी प्रह्लाद जैसे भक्त का जन्म हुआ। मुगलों के अत्याचार के खिलाफ बिगुल बजाने वाले महाराष्ट्र के छत्रपति शिवाजी महाराज की महानता के पीछे उनकी माता जीजाबाई के अविस्मरणीय योगदान को कौन भुला सकता है ? अंग्रेजी शासनकाल में नारी जागृति का शंख बजाने वाले विनोबा भावे के संयमी एवं तपस्वी जीवन में उनकी माता का कितना बड़ा योगदान रहा, यह उनके साहित्य में उन्हीं के शब्दों में पढ़ने को मिलता है। ऐसे एक दो नहीं, कई उदाहरण हैं जिनसे मातृशक्ति की महिमा का परिचय मिलता है।

अनुक्रमणिका

अनंत-अनंत प्रणाम हैं उन पूजनीया माताओं एवं सदगुरुओं को....

यह सर्वसामान्य सिद्धान्त है कि प्रत्येक शक्ति के साथ उसके सदुपयोग की कला भी उतना ही महत्त्व रखती है। मातृशक्ति अपने-आपमें महान है परंतु उसका उपयोग किस प्रकार किया जाना चाहिए यह भी एक गम्भीर विषय है। किसी महान शक्ति के सदुपयोग से जितना महान सृजन होता है, उसके दुरुपयोग से उतना ही विनाश भी होता है। रावण का जीवन इसका उदाहरण है। तेजस्वी एवं तपस्वी पुलस्त्य ऋषि का पौत्र एवं विश्रवा ऋषि का पुत्र होने पर भी माता केकसी की गलत शिक्षाओं ने रावण को ऐसा राक्षस बना दिया कि जिसका पुतला आज भी प्रतिवर्ष दीयासिलाई से फूँका जाता है।

केकसी के विचार राक्षसी प्रवृत्ति के थे। उसके जीवन में सत्संग का आदर नहीं था इसीलिए ऋषि पत्नी होने पर भी वह रावण जैसे कुपुत्र की माता के नाम से कलंकित हुई। कयाधू राक्षस पत्नी थीं परंतु उनके जीवन में सत्संग का आदर था। वे ब्रह्मवेत्ता देवर्षि नारद जी के सान्निध्य में बैठकर सत्संग सुनती थीं। अतः इतिहास में भक्त माता (प्रह्लाद की माता

क्याधू) होकर वंदनीय हो गयीं। जिन माताओं ने अपनी संतानों को महान बनाया उन सभी के जीवन में संयम, सदाचार एवं सत्संग का आदर रहा है।

परम पूजनीया माँ महँगीबा जी अपने लाड़ले पुत्र आसुमल को भगवान की मूर्ति के आगे बैठकर ध्यान करने को प्रोत्साहित करती थीं। वे मातृशक्ति के सदुपयोग की कला को बड़ी सूक्ष्मता से जानती थीं। माँ महँगीबा जी के जीवन में सत्संग का बड़ा आदर था। वे सत्संग में जातीं और वहाँ जो कुछ सुनतीं उसमें अपनी स्नेहसरिता मिलाकर बालक आसुमल को सुना देतीं।

अपने लाड़ले पुत्र आसुमल की चित्तरूपी भूमि में माँ महँगीबा द्वारा बोया गया वह बीज एक दिन विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गया। आसुमल ब्रह्मानंद की मस्ती में रमण करने वाले ब्रह्मवेत्ता संत श्री आशाराम जी बापू हो गये और माँ महँगीबा एक महान संत की माता के रूप में चिरवंदनीया हो गयीं। मातृश्री द्वारा बोया गया बीज ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु भगवत्पाद साँई श्री लीलाशाह जी महाराज की पूर्ण कृपा पा के एक ऐसा विशाल वृक्ष बन गया जिसकी शीतल छाया एवं मधुर फलों का आस्वाद लेकर करोड़ों नर-नारी धन्य हो रहे हैं।

सारा समाज ऋणी है उन माताओं एवं सद्गुरुओं का, जिन्होंने इस धरा को ऐसी-ऐसी अनमोल विभूतियाँ दीं। अनंत-अनंत प्रणाम हैं उन पूजनीया माताओं को, जिन्होंने अपनी संतानों को भक्ति, वीरता, कर्मयोग, प्रभुप्रीति, सत्संग आदि के सुसंस्कारों से सुसज्जित किया एवं अनंत-अनंत प्रणाम हैं उन ब्रह्मवेत्ता सद्गुरुओं को, जिन्होंने उन सुसंस्कारों से सुसज्ज हृदयों में ब्रह्माकार वृत्ति जगाकर संस्कार-विकार, सज्जनता-दुर्जनता, सुख-दुःख, उत्थान-पतन - इन द्वन्द्वों से परे की यात्रा कराते हुए उन्हें ब्रह्मपद में जगा दिया।

अनुक्रमणिका

वैर के नहीं भगवद्भक्ति के संस्कार दें

राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ थीं। प्रिय रानी का नाम था सुरुचि और अप्रिय रानी का नाम था सुनीति। दोनों रानियों के एक-एक पुत्र थे। एक बार रानी सुनीति का पुत्र ध्रुव अपने पिता की गोद में बैठने गया। प्रिय रानी ने तुरंत ही उसे पिता की गोद से नीचे उतार कर कहा: "पिता की गोद में बैठने के लिए पहले मेरी कोख से जन्म ले।" ध्रुव रोता-रोता अपनी माँ के पास गया और सब बात माँ से कही। माँ ने ध्रुव को समझाया: "बेटा ! यह राजगद्दी तो नश्वर है, तू तो भगवान की भक्ति करके शाश्वत गद्दी प्राप्त कर।" ध्रुव को माँ की सीख बहुत अच्छी लगी और तुरंत ही वह दृढ़ निश्चय करके तप करने के लिए जंगल में चला गया। रास्ते में हिंसक पशु मिले फिर भी वह भयभीत नहीं हुआ। इतने में उसे देवर्षि नारदजी मिले। ऐसे घरघोर जंगल में मात्र 5 वर्ष के बालक को देखकर नारद जी ने उससे वहाँ जाने का कारण पूछा। ध्रुव ने घर में हुई सब बातें नारद जी से कहीं और भगवान को पाने की तीव्र इच्छा प्रकट की।

नारदजी ने ध्रुव को समझाया: "तू तो इतना छोटा है और भयानक जंगल में ठंडी-गर्मी सहन करके तपस्या नहीं कर सकता इसलिए तू घर वापस चला जा।" परंतु ध्रुव दृढ़निश्चयी था। उसकी दृढ़ निष्ठा और भगवान को पाने की तीव्र इच्छा देखकर नारदजी ने ध्रुव को 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।' मंत्र देकर मधुवन जाने की आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया: "बेटा ! तू श्रद्धा से इस मंत्र को जपना। भगवान तुझे पर जरूर प्रसन्न होंगे।" ध्रुव तो कठोर तपस्या में लग गया। एक पैर पर खड़े होकर ठंडी-गर्मी, बरसात - सब सहन करते हुए नारद जी से प्राप्त गुरुमंत्र का जप करने लगा।

उसकी निर्भयता, दृढ़ता और कठोर तपस्या से भगवान नारायण स्वयं प्रकट हो गये। भगवान ने ध्रुव से कहा: "बेटा ! मैं तेरी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुझे जो चाहिए वह माँग ले।" ध्रुव भगवान को देखकर आनंदविभोर हो गया। भगवान को प्रणाम करके बोला: "हे भगवन् ! मुझे दूसरा कुछ भी नहीं चाहिए। मुझे अपनी दृढ़ भक्ति दो।" भगवान और अधिक प्रसन्न हुए और बोले: "तथास्तु ! मेरी भक्ति के साथ-साथ तुझे एक वरदान और भी देता हूँ कि आकाश में एक तारा 'ध्रुव तारा' के नाम से जाना जायेगा और दुनिया दृढ़ निश्चय के लिए तुझे सदा याद करेगी।" आज भी आकाश में हमें यह तारा देखने को मिलता है।

यहीं अगर माता सुनीति चाहतीं तो ध्रुव में प्रतिशोध की भावना भी भर सकती थीं कि 'तू बड़ा होकर अपने भाई से युद्ध करना।' परंतु उन्होंने ऐसा न करके ध्रुव में भगवद्भक्ति के संस्कार भरे, जिसके फलस्वरूप आज भी बालक ध्रुव को याद किया जाता है। आप भी अपने बच्चों में बचपन से ही भगवद्भक्ति के संस्कार डालें और उन्हें ध्रुव की कथा सुनाकर भगवन्नाम-जप के लिए प्रेरित करें।

अनुक्रमणिका

बालक शिवराम से कैसे बने महात्मा तैलंग स्वामी ?

महात्मा तैलंग स्वामी दक्षिण भारत में विजना जनपद के होलिया ग्राम में सन् 1607 में पौष मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी को इस धर पर अवतरित हुए। उनके पिता श्री नृसिंहधर गाँव के जमींदार थे और माता विद्यावती भगवान शंकर की अनन्य भक्त थीं। स्वामी जी के जन्म से पूर्व उनकी माता को सपने में कभी-कभी भगवान शंकर दिखाई देते थे।

नामकरण संस्कार के समय बालक का नाम माता ने शिवराम और पिता ने वंश परम्परानुसार शिवराम तैलंगधर रखा। बाल्यकाल से ही उनमें चंचलता का अभाव था। उनके हमउम्र बालक हुड़दंग मचाते किंतु वे उस समय मंदिर प्रांगण में अकेले एकटक कभी आकाश की ओर तो कभी शिवलिंग को निहारा करते और कभी-कभी बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ हो जाते थे।

किशोर शिवराम ने एक दिन माँ से प्रश्न किया: "माँ ! भगवान पूजा से प्रसन्न होते हैं या भक्ति से ?"

माँ ने समझाते हुए कहा: "बेटा ! भक्ति पूजा से उत्पन्न होती है और सेवा से दृढ़ होती है। इस प्रकार साधक के आध्यात्मिक जीवन का विकास होता है। 'गीता' (9.26) में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है:

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

तदहं भक्त्युपहतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

'जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्धबुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र-पुष्पादि मैं सगुणरूप से प्रकट हो के प्रीतिसहित खाता हूँ अर्थात् स्वीकार कर लेता हूँ।'

अगर सरल हृदय से शुद्ध भक्ति की जाय तो भगवान उसे ग्रहण करते हैं। शुद्ध भक्ति साधना से मिलती है, तब आत्मज्ञान प्राप्त होता है और यह आत्मज्ञान सदगुरु प्रदान करते हैं। सदगुरु से आत्मज्ञान प्राप्त करने पर ही साधना सफल होती है।"

वास्तव में शिवराम को आध्यात्मिक मार्गदर्शन देने वाली प्रथम गुरु उनकी माँ ही थीं।

श्रीमद्भागवत (5.5.18) में आता है कि 'वह माता माता नहीं वह पिता पिता नहीं जो पुत्र को भगवान के रास्ते न लगाये।'

अनुक्रमणिका

कैसे जगी गुरुप्राप्ति की तड़प ?

माँ से भगवद्भक्ति एवं आध्यात्मिक ज्ञान की बातें सुनकर शिवराम का सरल हृदय गुरुप्राप्ति के लिए तड़प उठा। एक दिन उन्होंने माँ से कहा: "माँ ! जब आप मुझे ज्ञान की इतनी बातें बताती हो तो मुझे वह ज्ञान क्यों नहीं दे देती ? माँ से बढ़कर भला मुझे कौन गुरु मिलेगा ?"

माँ ने कहा: "तुम्हारे जो गुरु हैं वे समय आने पर तुम्हें अवश्य अपने पास बुला लेंगे या स्वयं तुम्हारे पास आ जायेंगे। वत्स ! इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।" इसी प्रकार माँ अपने बेटे का ज्ञान बढ़ाती रही।

'इस क्षणभंगुर, नश्वर देह का कोई भरोसा नहीं। जो अनश्वर हैं, चिरस्थायी हैं, उन्हीं परमात्मदेव के अनुसंधान में अपना ध्यान केन्द्रित करूँगा।' - यह निश्चय कर शिवराम ने विवाह नहीं किया, आजीवन ब्रह्मचारी रहे।

वैराग्यमय जीवन और पूर्णता की प्राप्ति

सन् 1647 में शिवराम के पिता का निधन हो गया। उस समय शिवराम की उम्र 40 वर्ष थी। सन् 1657 में माँ विद्यावती भी चल बसीं। उनकी चिता को अग्नि देने के बाद सब लोग चले गये पर शिवराम वहीं बैठे रहे। भाई तथा गाँव के बुजुर्गों ने उनसे घर लौटने का आग्रह किया।

शिवराम ने कहा: "इस नश्वर शरीर के लिए एक मुट्ठी भोजन काफी है। वह कहीं न कहीं मिल ही जायेगा। रहने के लिए इससे उपयुक्त स्थान अन्यत्र कहीं नहीं है।"

वे चिता की राख शरीर पर मलकर वहीं बैठे रहे। उनके छोटे भाई श्रीधर ने उनके लिए वहाँ एक कुटिया बनवा दी, जिसमें वे लगभग 20 वर्ष तक साधनारत रहे।

फिर उन्हें सद्गुरु के रूप में भगीरथ स्वामी मिले। भगीरथ स्वामी ने उन्हें दीक्षा देकर बीजमंत्र प्रदान किया। दीक्षा के पश्चात उन्हें कई गुह्य रहस्यों की जानकारी होने लगी। 10 वर्ष पश्चात स्वामी जी ने उनको अपने निकट बुलाकर कहा: "अब तुम पूर्ण हो गये हो। भगवत्कृपा से तुम्हें जो कुछ प्राप्त हुआ है, अब उसका उपयोग लोक कल्याण के लिए करो। और अपनी शक्ति पर कभी घमंड मत करना।" इसके बाद तैलंग स्वामी के जीवन में ऐसी कई घटनाएँ घटित हुईं जो उनके योग सामर्थ्य एवं जनहित की भावना को दर्शाती हैं। वे 280 साल तक धरती पर रहे।

माँ के बचपन के दिये भगवद् भक्ति, ज्ञान व सद्गुरु-प्रीति के संस्कारों ने बालक शिवराम को महात्मा तैलंग स्वामी बना दिया, जिनके हयातीकाल में उनके सत्संग-सान्निध्य का लाभ पाकर अनेकों ने अपना जीवन धन्य किया।

अनुक्रमणिका

संत श्री आशाराम जी बापू को माँ द्वारा बचपन में मिले प्रभुप्रीति के संस्कार

माता को शिशु को प्रथम गुरु कहा गया है। इतिहास में ऐसे कितने ही उदाहरण हैं जिनमें महापुरुषों के जीवन में उनकी माताओं द्वारा दिये गये सुसंस्कारों की महत्वपूर्ण भूमिका दृष्टिगोचर होती है। हमारे शास्त्रों में माता मदालसा को आर्यमाता को आदर्श माना जाता है। उन्होंने अपने पुत्रों को बचपन में वेदांती लोरियाँ सुनाते हुए ब्रह्मज्ञान का अमृत पिलाकर ब्रह्मवेत्ता बना दिया था। छत्रपति शिवाजी महाराज की महानता के पीछे उनकी माता जीजाबाई का महान योगदान था। बालक कँवरराम माता की सत्शिक्षा से संत कँवरराम होकर अमर एवं पूजनीय हो गये। ऐसे ही पूजनीय माता माँ महँगीबा ने भी अपने पुत्र आसुमल की चित्तरूपी भूमि में महानता के बीज बचपन से ही डालने शुरू कर दिये थे।

ब्राह्ममुहूर्त में उठने व भगवद्भजन के संस्कार

अम्मा जी (माँ महँगीबा) स्वयं तो ईश्वर की पूजा-अर्चना, ध्यान करती ही थीं, अपने पुत्र आसुमल में भी यही संस्कार उन्होंने बाल्यकाल से ही डाले थे। अम्मा जी अनाज पीसते-पीसते नन्हें आसु को गोदी में बिठा कर सिंधी में यह भजन सुनातीं-

सुबुह सवेरो उथी निंड मां, पख्यां चूं चूं कनि

दीहं पोहर्यो पेट जो, रात्यां राम जपिनि।

मिठा मेवरड़ा से पाईदा, जेके सुबुह जो जागनि

लाल साँई दुध पुट लक्ष्मी तिन, जेके सुबुह जो जागनि।

अर्थात् प्रातः उठकर पक्षी किल्लोल करते हैं तब नींद से जग जाना चाहिए। जो दिन में पेट भरने के लिए परिश्रम करते हैं, वे भी रात को (रात्रि के अंतिम प्रहर यानी ब्रह्ममुहूर्त में) अंतरात्मा राम को रिझाते हैं। जीवन में मीठे फल वे ही पायेंगे जो सुबह जल्दी जागेंगे। उनको ही लाल साँई (भगवान झूलेलाल) धन-धान्य, सुख-शान्ति, पुत्र और लक्ष्मी प्रदान करते हैं।

इस प्रकार पूज्य बापू जी की बचपन में ध्यान भजन में रुचि जगाने वाली माँ महँगीबा जी ही थीं।

माँ ने बोये प्रभुप्रीति, प्रभुरस के बीज

पूज्य बापूजी कहते हैं- "मेरी यह माता इस शरीर को जन्म देने वाली माता तो हैं ही, साथ ही भक्तिमार्ग की गुरु भी हैं।

बचपन में मेरी माँ मेरे को बोलती थीं- "तेरे को मक्खन मिश्री खाना है ?"

मैं कहता: "हाँ।"

तो बोलतीं- "जा, आँखें मूँद के भगवान कृष्ण के आगे बैठ।"

तो हमारे पिता तो नगरसेठ थे, घर में तो खूब सम्पदा थी। जब मैं ध्यान करने बैठता तो माँ चाँदी की कटोरी में मक्खन-मिश्री लेकर मेरे सामने धीरे से खिसका के रख देती थीं। लेकिन मैं मक्खन मिश्री देखने बैठूँ तो नहीं रखती थीं। बोलतीं- "खूब जप कर, बराबर ध्यान करेगा तभी मिलेगा।"

फिर बराबर ध्यान करता तो माँ मक्खन मिश्री की कटोरी चुपके से रख देतीं।

पढ़ने जाता तो बोलतीं- "पेन चाहिए तुझे ? किताब चाहिए ?... भगवान से माँग।"

वे माँगा के रखतीं और जब मैं ध्यान करने बैठता तो भगवान के पास धीरे-से खिसका देतीं। मेरा तो भगवान में प्रेम हो गया। अब तो मक्खन-मिश्री क्या, भगवा का नाम हजार मक्खन-मिश्रियों से भी ज्यादा मधुर होने लग गया।"

माँ महँगीबा द्वारा अपने लाइले पुत्र आसुमल की चित्तरूपी भूमि में बोये गये वे प्रभुप्रीति, प्रभुरस के बीज एक दिन विशाल वृक्ष के रूप में परिवर्तित हो गये। सद्गुरु भगवत्पाद स्वामी श्री लीलाशाह जी की पूर्ण कृपा प्राप्त कर आसुमल ब्रह्मानंद की मस्ती में रमण करने वाले ब्रह्मवेत्ता संत श्री आशाराम जी बापू हो गये।

अनुक्रमणिका

माँ ने समझायी भगवद्-शरणागति की महत्ता

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

मैं 7 साल के आसपास का था तब की बात है। होली के दिन माँ ने एक मोटी रोटी बनायी, जिसको रोट बोलते हैं। उस पर दायें से बायें और ऊपर से नीचे धागा लपेटा। मुझे कहा कि "इसको होली में डालेंगे, रोटी तो सिक जायेगी, पक जायेगी, काली हो जायेगी लेकिन धागा सफेद रहेगा, जलेगा नहीं।

मैंने कहा: "धागा जलेगा नहीं, यह कैसे ? जब तुम रोटी निकालो तब मुझे बुलाना।" उत्कंठा थी।

होली जल गयी, गोबर के कंडे थे, लकड़ियाँ थीं, सब जल गये। मेरे सामने माँ ने चिमटे से रोटी निकाली। देखा तो रोटी सिककर एकदम काली-कलूट हो गयी थी पर धागा सफेद का सफेद !

माँ बोली- "जैसे प्रह्लाद की भक्ति से उसको अग्नि की आँच नहीं आयी, ऐसे ही इस धागे को आँच नहीं आयी। होलिका को तो वरदान था लेकिन भक्त के विरोध में उसका वरदान भी विफल हो गया और वह जल के मर गयी।"

पूजनीया अम्मा जी ने बचपन में ही संस्कार डाल दिये कि 'भगवान की शरण जाने वाला बड़ी-बड़ी आपदाओं से सुरक्षित हो जाता है।' ऐसे तो हमने हमारे जीवन में और हमारे साधकों के जीवन में भी कई बार देखा है कि जो भगवान का आश्रय लेकर चलते हैं, उनकी बड़ी-बड़ी विपदाएँ भी तत्काल या समय पाकर सम्पदाओं के रूप में बदल जाती हैं।

अनुक्रमणिका

साँईं श्री लीलाशाह जी की अनपढ़ दादी माँ का कैसा सत्संग-प्रभाव !

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

मेरे गुरु जी की वृद्ध दादी माँ पढ़ी लिखी नहीं थीं। सत्संग सुनकर उन्हीं विचारों में बस शांत हो जाती थीं। केवल सत्संग में सुनकर 'मैं आत्मा हूँ' यह पक्का कर लिया। मेरे गुरु जी भगवान लीलाराम जी तब बालक थे। उनको गोद में लेकर वे बोलतीं- "अरे लीलाराम ! बहुएँ और दूसरी माइयाँ मजाक उड़ाती हैं कि 'बूढ़ी 'खें-खें' कर रही है। मैं बूढ़ी नहीं हूँ और 'खें-खें' नहीं करती हूँ। यह तो शरीर करता है। मैं तो चैतन्य आत्मा हूँ और परमात्मा की सब लीला है। खें खें भी वही है, कहने वाला भी वही है। सबमें वही मेरा लीला-लाल !"

उन्होंने बचपन में लीलाराम जी में ऐसे संस्कार डाल दिये कि 20 साल की उम्र में तो लीलाराम जी आत्मसाक्षात्कारी हो गये ! अनपढ़ वृद्ध दादी माँ का यह कितना सत्संग-प्रभाव कि आज करोड़ों-करोड़ों लोग फायदा ले रहे हैं !

मेरी माँ ने मुझे ध्यान करने हेतु उत्साहित किया और लीलाराम जी की दादी जी ने उनको आत्मज्ञान के संस्कार दिये। इन दोनों महिलाओं का सहयोग आशाराम और लीलाशाह जी बापू के द्वारा आत्मज्ञान, आत्मसुख का कितना-कितना फैलाव कर रहा है, देख लो ! महिलाओं का, नारियों का कितना योगदान है नर-नारियों को नारायण-नारायणीरूप बनाने में !

अनुक्रमणिका

माता जीजाबाई ने पुत्र शिवाजी में फूँका अदम्य प्राणबल

17वीं शताब्दी का समय था। हिन्दुस्तान में मुगल शासकों का अत्याचार, लूटमार बढ़ती ही जा रही थी। हिन्दुओं को जबरन मुसलमान बनाया जा रहा था। मुगलों के अतिरिक्त पुर्तगालियों व अंग्रेजों ने भी भारतभूमि में अपने कदम जमाने शुरू कर दिये थे। परिस्थितियों के आगे घुटने टेक रहा हिन्दू समाज नित्यप्रति राजनैतिक तथा धार्मिक दुरावस्था की ओर अग्रसर हो रहा था। सबसे भयंकर प्रहार हमारी संस्कृति पर हो रहा था। धन व सत्ता की हवस की पूर्ति में लगे ये हैवान हमारी बहू-बेटियों की इज्जत भी सरेआम नीलाम कर रहे थे। ऐसी विषम परिस्थिति में वर्तमान महाराष्ट्र के पुणे जिले में वि.सं. 1687 की चैत्र मास के कृष्ण पक्ष की तृतिया को शिवाजी महाराज का आविर्भाव शाहजी के परिवार में हुआ।

माँ ने किया सदगुणों का सिंचन

बचपन से ही माता जीजाबाई ने रामायण, महाभारत, उपनिषदों व पुराणों से धैर्य, शौर्य, धर्म व मातृभूमि के प्रति प्रेम आदि की कथा-गाथाएँ सुनाकर शिवाजी में इन सदगुणों के सिंचन के साथ-साथ अदम्य प्राणबल फूँक दिया था। परिणामस्वरूप 16 वर्ष की नन्हीं अवस्था में ही उन्होंने हिन्दवी स्वराज्य को स्थापित कर उसका विस्तार करने का ध्रुव संकल्प ले लिया और अपने सुख-चैन, आराम की परवाह किये बिना धर्म, संस्कृति व देशवासियों की रक्षा के लिए वे अनेक जोखिम उठाते हुए विधर्मी ताकतों से लोहा लेने लगे। उन्होंने प्रबल पुरुषार्थ, दृढ़ आत्मबल, अदम्य उत्साह एवं अदभुत पराक्रम दिखाते हुए भारतभूमि पर फैल रहे मुगल शासकों की जड़े हिलानी शुरू कर दीं। शत्रु उन्हें अपना काल समझते थे। वे छत्रपति शिवाजी को रास्ते से हटाने के लिए नित्य नये षड्यंत्र रचते रहते। छल, बल, कपट आदि किसी भी प्रकार के कुमार्ग का अनुसरण करने में उन्होंने कोई कसर नहीं छोड़ी थी परंतु शत्रुओं को पता नहीं था कि जिसका संकल्प दृढ़ व इष्ट मजबूत होता है उसका अनिष्ट दुनिया की कोई ताकत नहीं कर सकती।

छत्रपति शिवाजी विवेक की जगह विवेक, बल की जगह बल तथा इन दोनों से परे की परिस्थितियों में ईश्वर एवं गुरु का आश्रय लेते हुए शत्रुओं को मुँहतोड़ जवाब देते।

[अनुक्रमणिका](#)

गुरुकृपा से हुआ आत्मसाक्षात्कार

बचपन में माँ ने संतों के प्रति श्रद्धा के बीज छत्रपति शिवाजी के मन-मस्तिष्क में बोये थे, उन्होंने आगे चलकर विराट रूप धारण किया। इस महान योद्धा के मुखमंडल पर शूरवीरता एवं गम्भीरता झलकती थी परंतु हृदय ईश्वर एवं संत निष्ठा के नवनीत से पूर्ण था। समय-समय पर वे संतों-महापुरुषों की शरण में जाते और उनसे ज्ञानोपदेश प्राप्त करते, जीवन का सार क्या है इसे जानने का यत्न करते।

कर्मयोगी छत्रपति शिवाजी अनवरत राज्य क्रांति में लगे रहे। कई हारे हुए हिन्दू राज्यों को पुनः जीतकर उन्होंने एकछत्र राज्य की स्थापना की। ऐसा संघर्षपूर्ण जीवन बिताते हुए भी उन्होंने सद्गुरु समर्थ जी एवं संत तुकाराम जी आदि महापुरुषों की सेवा में कोई कसर नहीं छोड़ी।

छत्रपति शिवाजी ने शत्रुओं के बीच लोहा लेते हुए, राजकाज का गला-डूब व्यवहार होते हुए भी बीच-बीच में समय निकाल कर समर्थ रामदास जी के चरणों में आत्मज्ञान की प्यास पूरी की और आत्मसाक्षात्कार किया।

धन्य हैं ऐसी माताएँ जो बचपन से ही बालकों में सुसंस्कार डाल के छत्रपति शिवाजी जैसे वीर सपूत सनातन धर्म, संस्कृति व राष्ट्र के हित में अर्पण कर देती हैं !

[अनुक्रमणिका](#)

क्या किसी स्कूल-कॉलेज में मुझे ये संस्कार मिल सकते थे ? - आचार्य विनोबा भावे

माँ ने दी ब्रह्मचर्य और देश-धर्म की सेवा की शिक्षा

आचार्य विनोबाजी भावे की माता रुक्मिणी देवी एक धर्मपरायण महिला थीं। वे प्रतिदिन भगवान की पूजा-अर्चना करते समय द्रवीभूत हो जाया करती थीं। माता के भक्ति के संस्कार उनकी संतानों पर पड़े।

विनोबाजी का बचपन का नाम विनायक था। अपनी माँ के सान्निध्य में बालक विनायक ने महाराष्ट्र के अधिकांश संतों की शिक्षाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उसे संतों के 10000 दोहे व चौपाइयाँ याद थीं। अनेक भजन भी याद थे। वह प्रायः मौन रहता और जरूरत पड़ने पर ही बोलता था। किशारावस्था में ही विनायक ने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प ले लिया था।

उसकी माँ ने अपने बेटे को सलाह दी कि वह अपने संकल्प पर सदैव डटा रहे। इन माँ ने अपने एक नहीं, तीनों बेटों को ब्रह्मचर्य व्रत की महिमा बता के आजीवन ब्रह्मचारी रहकर देश व धर्म के सेवा करने के संस्कार दिये।

सगर्भावस्था से लेकर जन्म व बड़े होने तक इन देवीस्वरूपा माँ ने बालक विनायक में ऐसे उत्तम संस्कारों का सिंचन किया कि यही बालक आगे चलकर संत विनोबाभावे बन गये।

दिव्य संस्कार-सिंचन की अनोखी रीति

बालक विनायक (विनोबाजी) के घर-आँगन में कटहल का एक पेड़ था। उसके फल पकने पर उन्हें तोड़ा गया। बाँटकर खाना घर का नियम था। विनायक की माता रुक्मिणी देवी ने यह शिक्षा उसको एक अनोखी रीति से दी।

उन्होंने विनायक से पूछा: "बेटा ! तुम्हें देव बनना अच्छा लगता है कि राक्षस ?"

अब कौन सा बच्चा कहेगा कि मुझे राक्षस बनना है !

माँ- "तुम्हें पता है कि देव किसे कहते हैं और राक्षस किसे ?"

विनायक: "जो स्वर्ग में रहे वह देव और जो नरक में रहे वह राक्षस।"

"नहीं बेटे ! देव और राक्षस दोनों यहीं पृथ्वी पर रहते हैं।"

"वह कैसे ?"

"जो दूसरों को दे वह 'देव' और जो अपने पास ही रखे वह 'राक्षस'।"

"तो बोलो बेटा ! तुम देव बनोगे कि राक्षस ?"

"देव।"

"तो जाओ, पहले पड़ोस में दे आओ फिर खुद खाओ।"

पत्तों से बने छोटे-छोटे दोनों में माँ ने कटहल के कोए (गूदे से लिपटे बीज) भर दिये। विनायक आस-पड़ोस में बाँटकर आया, तब माँ ने उसे खाने को दिया।

इस प्रकार जैसे बूँद-बूँद से सागर बनता है, वैसे ही माँ रुक्मिणी द्वारा दिये गये सुसंस्कारों से विनोबाजी का महान व्यक्तित्व निर्मित हुआ।

माँ की प्रेमाभक्ति का रंग बच्चे को भी लगा

संत की विनोबाजी की माता रुक्मिणी का जीवन भक्तिमय था। उन्हें चाहे झाड़ू-बुहारी करनी हो या बर्तन माँजने हों, हर समय उनके मन में भगवान का स्मरण चलता रहता था। घर का कामकाज करते समय वे संतों के अभंग (भजन, भक्ति-ज्ञानमय पद) मधुर स्वर में गातीं। घर में एक कोने में देव-मंदिर था। सबको भोजन करा के दोपहर में संध्या के समय वे प्रभु-मूर्ति के सामने हाथ जोड़कर बैठ जातीं। भगवान का पत्र-पुष्प-नैवेद्य से पूजन करतीं और अंत में अपने दोनों कान पकड़कर कहतीं- 'हे अनंतकोटि ब्रह्मांडनायक ! मेरे अपराधों को क्षमा कर !....' तब उनकी आँखों से प्रेमाभक्ति के मोती झरने लगते और वे भगवद्-प्रार्थना में स्वयं को भूल जाती थीं।

नन्हें विनायक के चित पर इसका बहुत प्रभाव पड़ा। माँ के नेत्रों की अश्रुधारा में विनायक का चित भी जाने-अनजाने विगलित होने लगा और भक्ति के रंग में रँगने लगा।

जब-जब विनोबाजी बचपन की इस घटना का जिक्र करते थे, उनकी आँखों में प्रेम के आँसू छलक पड़ते थे।

विनोबा जी कहते थे: "विशेष दिन हमारी आँखों से भी आँसू बह सकते हैं। जैसे-श्रीराम नवमी या श्रीकृष्ण जन्माष्टमी। परंतु रोज की पूजा में इस तरह की अश्रुधारा बहते हुए मैंने देखी है। यह भक्ति के बिना नहीं हो सकता। मेरे हृदय में माँ के जो स्मरण बचे हैं उनमें यही सर्वश्रेष्ठ स्मरण है।"

माँ ने विनोबाजी से बचपन में रोज तुलसी-पौधे को पानी देने का नियम करवाया था। माँ ने कहा: "बच्चे ! अब तुम समझदार हो गये हो। स्वयं स्नान कर लिया करो और प्रतिदिन तुलसी के इस पौधे में जल भी चढ़ाया करो। तुलसी-उपासना की हमारी परम्परा पुरखों से चली आ रही है।"

विनोबा जी ने तर्क किया: "माँ ! तुम कितनी भोली हो ! इतना भी नहीं जानती कि यह तो पौधा है। पौधों की पूजा में समय व्यर्थ खोने से क्या लाभ है ?"

"लाभ है मुन्ने ! श्रद्धा कभी निरर्थक नहीं जाती। हमारे जीवन में जो विकास और बौद्धिकता है, उसका आधार श्रद्धा ही है। श्रद्धा छोटी उपासना से विकसित होती है और अंत में जीवन को महान बना देती है, इसलिए पौधों में भगवद्भाव बेबुनियाद नहीं है।"

बालक विनोबा को माँ के उत्तर से खूब प्रसन्नता हुई। अपनी माता का एक और उज्ज्वल पक्ष उसके साने आया था। 'वासुदेवः सर्वम्' का महत्त्वपूर्ण सूत्र बालक विनोबा को मिल गया था। विनोबा ने प्रतिदिन तुलसी को जल देना प्रारम्भ कर दिया और माता की शिक्षा हृदयंगम कर ली। उस माँ की शिक्षा कितनी सत्य निकली, इसका प्रमाण अब सबके सामने है।

अनुक्रमणिका

मानव-धर्म की शिक्षा देकर माँ ने बड़ा उपकार किया

विनोबाजी कहते हैं- "माँ के मुझे पर अनंत उपकार हैं। उन्होंने मुझे दूध पिलाया, खाना खिलाया, बीमारी रात-रात जागकर मेरी सेवा की, ये सारे उपकार तो हैं ही लेकिन उससे कहीं अधिक उपकार उन्होंने मुझे मानव के आचार-धर्म की शिक्षा देकर क्या किया है।

एक बार मेरे हाथ में एक लकड़ी थी और उसमें से मैं मकान के खम्भे को पीट रहा था। माँ ने मुझे रोककर कहा: "उसे क्यों पीट रहे हो ? वह भगवान की मूर्ति है। क्या उसे तकलीफ देनी चाहिए ?" मैं रुक गया। सब भूतों (जड़ पदार्थों एवं चर-अचर प्राणियों) में भगवद्भावना रखें, यह बात बिल्कुल बचपन में माँ ने मुझे पढ़ायी।

स्कूलों में क्या पढ़ाई होती है ? क्या किसी स्कूल कॉलेज में या किसी पुस्तक द्वारा मुझे ये संस्कार मिल सकते थे ? मेरे मन पर मेरी माँ के जो संस्कार हैं, उनके लिए कोई उपमा नहीं है।"

शुरु से ही विनोबाजी में संन्यास जीवन के प्रति आकर्षण था। कम खाना, सुबह जल्दी उठना, जमीन पर सोना, 'दासबोध', 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे सत्शास्त्रों का वाचन-मनन करना आदि सदगुण बचपन से ही उनमें प्रकट हुए थे। बेटे को संन्यास-पथ पर बढ़ते देख माता रुक्मिणी को दुःख नहीं होता था। वे कहती थीं- "विन्या ! गृहस्थाश्रम का अच्छी तरह पालन करने एक पीढ़ी का उद्धार होता है परंतु उत्तम ब्रह्मचर्य पालन से 42 पीढ़ियों का उद्धार होता है।"

इस प्रकार उन्होंने विनोबा जी को आत्मजिज्ञासूपति के पथ पर प्रोत्साहित किया।

'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'

विनोबाजी जब घर छोड़कर गये तो चिट्ठी लिखी: 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा (अब यहाँ से ब्रह्मविचार आरम्भ किया जाता है) - मैं घर छोड़ रहा हूँ।'

अड़ोस-पड़ोस में बात फैली। लोग कहते: 'आजकल के लड़के होते ही ऐसे हैं, माँ-बाप की परवाह नहीं करते हैं।' तब विनोबाजी की माँ कहतीं- 'मेरा विन्या कोई नाटक-वाटक (सिनेमा आदि) जैसी गलत बातों के लिए थोड़े ही घर छोड़कर गया है, वह तो ब्रह्म की खोज के लिए गया है ! वह देश, धर्म, संस्कृति, समाज और ईश्वर की सेवा के लिए घर छोड़कर गया है। मेरे मन में इसका बड़ा संतोष व गौरव है।"

विनोबा जी के उज्ज्वल चरित्र के पीछे माँ द्वारा दिये गये सुसंस्कारों का अमूल्य योगदान है। ऐसी माताओं के समाज पर अनंत उपकार हैं जिन्होंने समाज को ऐसे पुत्ररत्न प्रदान किये। वे माताएँ धन्य हैं ! ऐसी माताओं के माता-पिता व कुल गोत्र भी धन्य हैं !!

अनुक्रमणिका

दही जमाने वाले भी भगवान !

संत विनोबा भावे के बचपन की बात है। उनकी माँ रात को जब दही जमाती तो भगवान की प्रार्थना करके जमाती थीं। बालक विनोबा ने एक दिन पूछा: "माँ ! दही जमाने में परमेश्वर को बीच में घसीटने की क्या जरूरत है ? उनकी प्रार्थना न करें, उनका नाम न लें तो क्या दही नहीं जमेगा ?"

माँ ने कहा: "विन्या ! हम अपनी तरफ से भले ही पूरी तैयारी कर लें पर दही तो ठीक से तभी जमेगा जब भगवान की कृपा होगी।"

विनोबा जी कहते हैं- "जेल में मैं सब बातों का ध्यान रखकर दही जमाता था फिर भी कभी-कभी खट्टा हो जाता था, तब मुझे माँ की यह बात याद आती थी।"

कितनी ऊँची शिक्षा दी है भारत की इन माता ने अपने बालक को ! बचपन से ही वेदांत के संस्कारों का सिंचन किया कि दही भले जमता हुआ दिखता है परंतु वह जिसकी सत्ता से जमता है, उसका स्मरण कर हमें उसके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए। हे भारत की माताओ ! आप भी अपने बच्चों में ऐसे दिव्य संस्कारों का सिंचन करो तो आगे चलकर वे स्वयं का, तुम्हारा व तुम्हारे कुल और देश का नाम अवश्य रोशन करेंगे। उनके कर्मों में भक्तिरस आयेगा तो निर्वासनिक नारायण के सुख में उनको प्रतिष्ठित कर देगा।

अनुक्रमणिका

माँ के संस्कारों एवं गुरुकृपा से नरेन्द्र से बने स्वामी विवेकानंद

संतान पर माता-ता के संग और गुण-अवगुण का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है। पूरे परिवार में माँ के जीवन और उसकी शिक्षा का संतान पर सर्वाधिक प्रभाव पड़ता है। हर माँ 'आदर्श माँ कैसे बनें ?' इसकी शिक्षा इस पुस्तक एवं पूज्य बापू जी जैसे ब्रह्मवेत्ता सदगुरु के सत्संग आदि के माध्यम से पा सकती है और अपनी संतान को सुंस्कार देकर उसे सर्वोत्तम लक्ष्य तक पहुँचाने में बहुत सहायक हो सकती है। इस बात को समझने वाली और उत्तम संस्कारों से सम्पन्न थी माता भुवनेश्वरी देवी।

सुसंस्कार सिंचन हेतु माता भुवनेश्वरी देवी बचपन में अपने पुत्र नरेन्द्र को रोचक एवं रसमय प्रेरक कहानियाँ व भगवान, संतो-महापुरुषों के प्रेरणादायी जीवन-चरित्र आदि सुनातीं। वे जब भगवान श्रीराम जी के कार्यों में अपने जीवन को अर्पित कर देने वाले वीर-भक्त हनुमान जी के अलौकिक कार्यों की कथाएँ सुनातीं तो नरेन्द्र को बहुत ही अच्छा लगता। माता से उन्होंने सुना कि 'हनुमान जी अमर हैं, वे अभी भी जीवित हैं।' तब से हनुमान जी के दर्शन हेतु नरेन्द्र के प्राण छटपटाने लगे। एक दिन नरेन्द्र भगवत्कथा सुनने गये। कथाकार पंडित जी नाना प्रकार की आलंकारिक भाषा में हास्य रस मिला के हनुमान जी के चरित्र का वर्णन कर रहे थे। नरेन्द्र धीरे-धीरे उनके पास जा पहुँचे। पूछा: "पंडित जी ! आपने जो कहा कि हनुमान जी केला खाना पसंद करते हैं और केले के बगीचे में ही रहते हैं तो क्या मैं वहाँ जाकर उनके दर्शन पा सकूँगा ?"

बालक में हनुमान जी से मिलने की कितनी प्यास थी, कितनी जिज्ञासा थी इस बात की गम्भीरता को पंडित जी समझ न सके। उनको हँसते हुए कहा: "हाँ बेटा ! केले के बगीचे में ढूँढने पर तुम हनुमान जी को पा सकते हो।"

बालक घर न लौटकर सीधे बगीचे में जा पहुँचा। वहाँ केले के एक पेड़ के नीचे बैठ गया और हनुमान जी की प्रतीक्षा करने लगा। काफी समय बीत गया पर हनुमान जी नहीं आये।

अधिक रात बीतने पर निराश हो बालक घर लौट आया। माता को सारी घटना सुनाकर दुःखी मन से पूछा: "माँ ! हनुमान जी आज मुझसे मिलने क्यों नहीं आये ?" बालक के विश्वास के मूल पर आघात करना बुद्धिमती माता ने उचित न समझा। उसके मुखमंडल को चूमकर माँ ने कहा: "बेटा ! तू दुःखी न हो, हो सकता है आज हनुमान जी श्रीराम जी के काम से कहीं दूसरी जगह गये हों, किसी और दिन मिलेंगे।" आशामुग्ध बालक का चित्त शांत हुआ, उसके मुख पर फिर से हँसी आ गयी। माँ के समझदारीपूर्ण उत्तर से बालक के मन से हनुमान जी के प्रति गम्भीर श्रद्धा का भाव लुप्त नहीं हुआ, जिससे आगे चलकर हनुमान जी के ब्रह्मचर्य-व्रत से प्रेरणा पा के उसने भी ब्रह्मचर्य-व्रत धारण किया।

बाल मन में देव-दर्शन की उठी इस अभिलाषा को, श्रद्धा की इस छोटी सी चिनगारी को देवीस्वरूपा माँ ने ऐसा तो प्रज्वलित किया कि वह शीघ्र ही ईश्वर-दर्शन की तड़परूपी धधकती विरहाग्नि बन गयी। और नरेन्द्र की यह तीव्र तड़प सदगुरु रामकृष्ण परमहंस जी के चरणों में पहुँचकर पूरी हुई। सदगुरु की कृपा ने नरेन्द्र को स्वामी विवेकानंद बना दिया, देह में रहे हुए विदेही आत्मा का साक्षात्कार कराके परब्रह्म परमात्मा में प्रतिष्ठित कर दिया।

अनुक्रमणिका

माँ का ऋण कैसा ?

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

स्वामी विवेकानंद को किसी युवक ने कहा: "महाराज ! कहते हैं कि माँ का ऋण चुकाना कठिन होता है। ऐसा तो क्या है माँ का ऋण ?"

विवेकानंदजी: "इस प्रश्न का उत्तर प्रायोगिक चाहते हो ?"

"हाँ महाराज !"

"थोड़ी हिम्मत करो, यह जो पत्थर पड़ा है, इसको अपने पेट पर बाँध लो और दफ्तर में काम करने जाओ। शाम को मिलना।"

पेट पर ढाई-तीन किलो का पत्थर बँधा हो और कामकाज करे तो हालत क्या होगी ? आजमाना हो तो आजमा के देख लेना। नहीं तो मान लो, क्या हालत होती है।

वह थका-माँदा शाम को लौटा। विवेकानंद जी के पास जाकर बोला: "माँ का ऋण कैसा ? इसका जवाब दे पाने में तो बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी। अब बताने की कृपा करें कि माँ का ऋण कैसा होता है ?"

"यह पत्थर तूने कब से बाँधा है ?"

"आज सुबह से।"

"एक ही दिन हुआ, ज्यादा तो नहीं हुए न ?"

"नहीं।"

"तू एक दिन में ही तौबा पुकार गया। जो महीनों-महीनों तेरा बोझ लेकर घूमती थीं, उसने कितना सहा होगा ! उसने तो कभी 'ना' नहीं कहा। अब इससे ज्यादा प्रायोगिक क्या बताऊँ तुझे ?"

अनुक्रमणिका

बालक तीर्थराम को बूआ माँ से मिले संस्कार

बालक तीर्थराम जब एक वर्ष के थे तभी उनकी माँ का देहांत हो गया था। उनका पालन-पोषण उनकी बूआ ने किया था, जो एक धर्मपरायण महिला थीं। वे प्रतिदिन बालक को मंदिर ले जातीं। बालक के मन पर वहाँ के सात्विक वातावरण का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। शंख ध्वनि से तीर्थराम को इतना प्रेम था कि उसको सुनकर वह रोना भूल जाता और एकदम शांत हो जाता।

तीर्थराम के पिता कहते थे "जब राम (तीर्थराम) 3 वर्ष का था तब एक दिन संध्या के समय मैं उसे लेकर सत्संग में गया। उसके लिए सत्संग समझना एक प्रकार से असम्भव था परंतु वह अत्यंत शांत मुद्रा में बैठकर संत की ओर अपलक नेत्रों से देख रहा था। दूसरे दिन जब सत्संग प्रारम्भ हेतु शंख की ध्वनि हुई तो राम फूट के रोने लगा। घरवाले उसके रोने का कारण समझ नहीं सके। उसे चुप कराने के लिए मिठाइयाँ और खिलौने दिये परंतु उसने सारी वस्तुएँ फेंक दीं और उसका रोना-चिल्लाना चालू ही रहा। अंत में मैं उसे गोद में उठाकर सत्संग-स्थल की ओर चला। ज्यों-ज्यों उस स्थान की ओर बढ़ता गया, त्यों-त्यों वह शांत होता गया। ज्यों ही मैं रुकता, उसका रोना-चीखना शुरू हो जाता। वहाँ पहुँचने पर वह अत्यधिक आह्लादित और शांत सा हो गया। इतना ही नहीं, वह टकटकी लगाकर संत की तरफ देखने लगा।"

उम्र के साथ तीर्थराम का सत्संग के प्रति प्रेम भी बढ़ता गया। 4 साल में तो वे अकेले ही सत्संग सुनने जाने लगे थे। एकांत से उन्हें खूब अनुराग था तथा वृत्ति बचपन से ही अंतर्मुखी थी। वे प्रायः एकान्त में चिंतन में मग्न रहने लगे।

6 वर्ष की उम्र में उन्हें प्रारम्भिक पाठशाला में भर्ती कराया गया। तीर्थराम को स्वाध्याय के प्रति असीम अनुराग था। प्रातःकाल का समय वे अध्ययन, चिंतन, ध्यान में व्यतीत करते। विद्यार्थी जीवन में भी सभी उनका सत्संग के प्रति अनुराग बना रहा। पाठशाला के पास की धर्मशाला में प्रतिदिन 2 बजे सत्संग होता था। एक बार उन्होंने अपने अध्यापक से सत्संग में जाने की अनुमति माँगी परंतु उन्होंने इन्कार कर दिया। इससे तीर्थराम की आँखों में आँसू आ गये। उन्होंने करुणाभाव से प्रार्थना की: "साबह ! मुझे सत्संग में जाने दीजिये। मैं एक घंटे वाले अवकाश में पाठशाला का सारा काम पूरा कर लूँगा।" उनकी इस निष्ठा से अध्यापक महोदय पिघल गये और उन्हें सहर्ष आज्ञा दे दी।

बचपन के आध्यात्मिक संस्कारों तथा सत्संग-प्रेम ने बालक तीर्थराम को आगे चलकर ब्रह्मानुभूति की यात्रा करने में सहायता की और वे स्वामी रामतीर्थ के नाम से विश्वविख्यात हुए।

अनुक्रमणिका

बच्चों को संस्कार दें - पूज्य बापू जी

आज पश्चिमी देश भारतीय संस्कृति को अपना रहे हैं। चाहे योग-साधना की बात हो या धर्म के प्रति आस्था-विश्वास की, इस संस्कृति का हर रंग लोगों को एक संदेश देता है। आज हम स्वयं अपने दुश्मन बने हुए हैं। धन-वैभव के भौतिक सुख को हासिल करने के लिए अपने संस्कारों और संस्कृति से दूर होते जा रहे हैं। धन को ही सर्वस्व मानने से विवेक और बुद्धि का नाश होता है। मनुष्य जीवन का एक ही लक्ष्य होना चाहिए - प्रभु हमको इतना दीजिये कि रहे स्वरूप (आत्मस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप) में प्रीत।

बाल्यकाल में माँ ही बच्चों को संस्कारी बनाती है। बच्चों के मान-पटल पर उस समय जो कुछ अंकित किया जाता है वह जीवनपर्यन्त उनकी जीवन पूँजी के रूप में उनके साथ रहता है।

अनुक्रमणिका

बालक रविदास को माँ से मिली संत-सेवा की शिक्षा

बाल्यकाल में बच्चे को जैसे संस्कार मिल जाते हैं, वह आगे चलकर वैसा ही बनता है। बालक रविदास को उनकी माता करमादेवी ने भगवद्भक्ति के संस्कार दिये। बड़ों का सम्मान करना, महापुरुषों को प्रणाम करना तथा साधु-संतों की सेवा करना परम धर्म है - उनकी माता द्वारा दिये गये ये संस्कार बालक रविदास के हृदय में गहरे उतर गये थे। उनकी माता संतों-महापुरुषों के भगवत्प्रीति, भगवदीय प्रेरणा के प्रसंग सुनाती थीं, जिससे यही बालक आगे चलकर संत रविदास जी के रूप में प्रसिद्ध हुए।

मैंने सच्चा सौदा किया है

बालक रविदास जब जूते बनाने व बेचने के अपने पिता के व्यवसाय में योगदान देने लगे थे, तब एक दिन उनके पिता रघु ने उन्हें दो जोड़ी जूते बेचने के लिए बाजार भेजा। बालक को बाजार में बैठे-बैठे दोपहर हो गयी मगर जूते नहीं बिके। इस खाली समय में भगवद्भजन में मस्त रहे। तभी उन्हें दो साधु भरी दोपहर में नंगे पाँव जाते हुए दिखे। यह देख उनके हृदय में पीड़ा हुई। उन्होंने साधुओं को ससम्मान रोककर पूछा: "महात्मन् ! इतनी गर्मी में आप नंगे पैर क्यों हैं ?"

साधु बोले: "बेटा ! हम भगवद्भजन में मस्त रहते हैं। बाकी जैसी प्रभु की इच्छा !"

"महाराज ! मेरे पास तो केवल दो जोड़े जूते हैं। यदि आप इन्हें स्वीकार कर लें तो मुझे बड़ी खुशी होगी।"

रविदास की नम्रता से साधु बड़े खुश हुए। दोनों साधु जूते पहनकर रविदास जी को आशीर्वाद देकर चले गये।

घर आने पर पिता जी ने पूछा: "दोनों जोड़ी जूते बिक गये ?"

"बिके तो नहीं मगर आज मैंने एक सच्चा सौदा किया है।" उन्होंने सारी बात बता दी।

"वह तो ठीक है मगर अब इस तरह घर का खर्च कैसे चलेगा ?"

"पिता जी ! प्रभु कृपा से हमारे घर में कोई कमी नहीं आयेगी।"

"बेटा ! साधु-संतों की सेवा करना हमारा धर्म है किंतु गृहस्थी चलाना भी हमारा कर्तव्य है।"

लेकिन रविदास जी तो सेवाभावना में अडिग रहे।

अनुक्रमणिका

जब पूरा सामान दे डाला

रविदास जी अपना कार्य पूरी मेहनत व लगन से करते थे। जैसे संत कबीर जी कपड़ा इस भाव से बुनते थे कि 'इसे मेरे राम जी पहनेंगे' तो वह कपड़ा लोगों को खूब पसंद आता था, ऐसे ही रविदास जी जूते बनाते समय यही भाव रखते थे कि 'इन्हें परमात्मा पहनेंगे।' इससे उनके बनाये जूते सभी को बहुत पसंद आते थे।

एक बार साधुओं का एक समूह रविदास जी के यहाँ आ पहुँचा। उस समय वे जूते बनाने में मग्न थे। साधुओं को घर आया देख वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उनका बहुत सम्मान किया, फिर प्रणाम करके बोले: "आज माता-पिता घर में नहीं हैं इसलिए भोजन बनाकर खिलाने में असमर्थ हूँ परंतु कच्चा सामान है, आप इसे ही स्वीकार करें।"

साधुजन भोजन का सीधा-सामान पाकर बहुत प्रसन्न हुए और रविदास जी को आशीर्वाद देकर चले गये। शाम को जब माता-पिता घर लौटे तो रविदास जी ने सारी बात बतायी।

इस बार पिता प्रसन्न हुए और कहा: "बेटा ! यह तो तुमने बहुत पुण्य का कार्य किया है। साधु-संतों की सेवा करना ही हमारा धर्म है।"

जीवन में सदगुरु की आवश्यकता व महत्ता का वर्णन संत रविदास जी ने अपनी साखियों में किया है:

रामानन्द मोहि गुरु मिल्यो, पाया ब्रह्म बिसास¹ ।

राम नाम अमि² रस पियो, रैदास ही भयो षलास³ ॥

गुरु ग्यान दीपक दिया, बाती दड़ जलाय ।

रैदास हरि भगति कारनै, जनम मरन विलमाय⁴ ॥

1 विश्वास 2 अमृत 3 पवित्र 4 मुक्त होना

संत रैदास जी (रविदास जी) गुरुविमुख लोगों के लिए हितभरी सलाह देते हुए कहते हैं-
भौ सागर दुतर अति, किंधु मूरिष यहु जान।
रैदास गुरु पतवार है, नाम नाव करि जान॥
'हे मूढ़ ! यह अच्छी तरह जान ले कि यह संसाररूपी सागर पार करना बड़ा कठिन है।
केवल सद्गुरुरूपी नाव ही तुझे पार लगा सकती है। अतः उनके नाम (स्मरण) रूपी नाव पर
सवार होकर इस संसाररूपी सागर को पार कर ले।'

अनुक्रमणिका

माँ बनो तो आदर्श माता मदालसा जैसी

मदालसा देवी कहती हैं- "एक बार जो मेरे उदर से गुजरा व यदि दूसरी स्त्री के उदर में
जाय, मुक्त न होकर दूसरा जन्म ले तो मेरे गर्भधारण को धिक्कार है !"

वे जब अपने पुत्रों को पालने में सुलाती थीं, तब उनको आध्यात्मिक ज्ञान की लोरियाँ
सुनाती थीं। जैसे:

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरंजनोऽसि संसारमायापरिवर्जितोऽसि ।

संसारस्वपनं त्यज मोहनिद्रां मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥

'हे पुत्र, तू शुद्ध है, बुद्ध है, निरंजन है, संसार की माया से रहित है। यह संसार
स्वपनमात्र है। उठ, जाग, मोहनिद्रा का त्याग कर ! तू सच्चिदानंद आत्मा है।'

इन आर्य महिला ने, आदर्श माता ने अपने सभी पुत्रों को आत्मज्ञान से सम्पन्न बनाकर
संसार-सागर से पार करा दिया।

महिला बनो तो ऐसी बनो। बच्चों को आत्मज्ञान की लोरियाँ सुनाओ। घर में भी आत्मज्ञान
की चर्चा करो। सुख-दुःख आये तो आत्मज्ञान की निगाहों से निहारो। इस संसार से कभी प्रभावित
मत होओ। अपने परमात्मा की मस्ती में मस्त रहो। ॐ..... ! ॐ..... !!

माँ सुमित्रा जी की लक्ष्मण जी को अनुपम सीख

भगवान श्रीरामचन्द्र जी को 14 वर्ष का वनवास मिला। लक्ष्मण जी ने उनसे कहा: "प्रभु !
मैं भी आपके साथ चलूँगा।" श्रीराम जी ने कहा: "जाओ, माँ से विदा माँग आओ, उनसे आशीर्वाद
ले आओ।"

लक्ष्मण जी ने माँ सुमित्रा को प्रणाम कर कहा: "माँ "मैं प्रभु श्रीराम की सेवा में वन
जाना चाहता हूँ।"

सुमित्रा जी: "बेटा ! तुम मेरे पास क्यों आये ?"

"माँ ! आप मेरी माता हैं इसलिए आपका आशीर्वाद, आपकी आज्ञा लेने आया हूँ।"

"बेटा ! क्या पिछले जन्म में मैं तेरी माँ थी ? क्या अगले जन्म में मैं तेरी माँ होऊँगी ? कुछ पता नहीं... परंतु बेटा ! जन्मों-जन्मों से जो तेरी माँ हैं, जन्मों-जन्मों से जो तेरे पिता हैं, तू उन प्रभु की सेवा में रहा है तो मेरे से पूछने की क्या आवश्यकत है ? फिर भी मैं तुझे एक सलाह देती हूँ कि तुम पाँच दोषों से बचना।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहूँ इन्ह के बस होहू ।

सकल प्रकार बिकार बिहाई । मन क्रम बचन करेहु सेवकाई ॥

'राग, रोष, ईर्ष्या, मद और मोह - इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री राम सीताराम की सेवा करना।' (श्रीरामचरित. अयो. कां. 74.3)

बेटा ! पहला दोष है - राग । तुम प्रभु की सेवा करने जा रहे हो तो कई लोग तुम्हें मिलेंगे, कड़ियों से परिचय होगा परंतु तुम किसी में राग मत करना, आसक्ति मत करना। अनुराग तो बस एक राम जी से ही करना।

दूसरा दोष है - रोष (क्रोध) । कभी तुम्हारे मन का न हो तो रोष नहीं करना। क्रोध से बचना। ऐसी इच्छ नहीं करना जिसकी पूर्ति न होने पर क्रोध उत्पन्न हो।

तीसरा दोष है - ईर्ष्या। कोई प्रभु की ज्यादा सेवा-भक्ति करे, प्रभु किसी को ज्यादा प्रेम करें तो तुम उससे ईर्ष्या नहीं करना बल्कि उसकी सेवा-भक्ति का आदर करना। कोई श्रीरामजी के ज्यादा निकट हो तो उससे ईर्ष्या नहीं करना अपितु उनके प्रति अपना प्रेम बढ़ाना।

चौथा दोष है - मद। तुम अभिमान से बचना। सेवा, उन्नति या सदगुणों का अपने में अभिमान मत लाना अपितु इन्हें प्रभु की कृपा समझना।

पाँचवाँ दोष है मोह । मोह का अर्थ है अज्ञान, उलटी समझ। तुम अज्ञानवश किसी के आकर्षण में मत फँसना। 'इसके बिना नहीं चलेगा, उसके बिना नहीं चलेगा....' ऐसा नहीं करना अपितु प्रभु में अपने मन को लगाये रखना। अनुकूलता में फँसना नहीं, प्रतिकूलता से घबराना नहीं, प्रभु का आश्रय लेना और अपने हृदय में उनको बसाये रखना तथा निष्कपटतापूर्वक उनकी सेवा करना।

बेटा लक्ष्मण ! जहाँ श्रीराम जी का निवास हो वहीं तुम्हारी अयोध्या है। श्रीरामचन्द्रजी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं। तुम अवश्य उनके साथ वन जाओ और सेवा धर्म निभाकर अपना जीवन सफल बनाओ। हे पुत्र ! मैं तुम पर बलिहारी जाती हूँ। मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छलरहित होकर श्रीराम जी के चरणों में स्थान प्राप्त किया है।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥

'संसार में वही युवती पुत्रवती है, जिसका पुत्र भगवान का भक्त हो। नहीं तो जो भगवान से विमुख पुत्र से हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका पुत्र को जन्म देना व्यर्थ ही है।' (श्रीरामचरित. अयो.कां. 74.9)

सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि भगवान के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो। बेटा ! तुम वही करना जिससे श्रीरामचन्द्रजी वन में क्लेश न पायें। तुम्हारे कारण श्रीराम जी और सीता जी सदैव सुख पायें।"

माँ सुमित्रा ने इस प्रकार लक्ष्मण जी को अनुपम शिक्षा देकर वन जाने की आज्ञा दी और वह आशीर्वाद दिया कि "श्री सीताजी और श्री रघुवीर जी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित्र नया हो, बढ़ता रहे।"

माता सुमित्रा की भगवत्प्रीति और उनका सद्ज्ञान से ओतप्रोत उपदेश अदभुत है ! धन्य हैं ऐसी माँ, जो अपनी प्यारी संतान को अत्यंत हितकारी सीख देकर प्रभुभक्ति का उपदेश देती हैं और प्रभुसेवा में भेजती हैं। हे प्रभो ! हम पर ऐसी कृपा कीजिये कि हमारे हृदय में भी आपके प्रति ऐसी भक्ति आ जाय, हमारी मति में ऐसा सद्ज्ञान दृढ़ हो जाय ।

यन्मातापितरौ वृत्तं तनये कुरुतः सदा ।

न सुप्रतिकरं तत् मात्रा पित्रा च यत्कृतम् ॥

'माता और पिता पुत्र के प्रति जो सर्वदा स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं, उपकार करते हैं, उसका प्रत्युपकार सहज ही नहीं चुकाया जा सकता ।' (श्रीमद् वाल्मीकि रामायण 2.111.9)

[अनुक्रमणिका](#)

हनुमान जी को माँ अंजना से मिली अनुपम शिक्षा

माँ के जीवन और उसकी शिक्षा का बालक पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आदर्श माताएँ अपनी संतानों को श्रेष्ठ एवं आदर्श बना देती हैं। पुराण आदि सत्शास्त्रों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं । माँ संतान में बचपन से ही सुसंस्कारों की नींव डाल सकती है।

हनुमान जी बचपन में बहुत चंचल व नटखट स्वभाव के थे। उनकी बाल-लीलाओं से त्रस्त हुए भृगु और अंगिरा वंश के ऋषियों के श्राप से वे अपने अतुलित बल और पराक्रम को भूलकर अत्यंत सौम्य स्वभाव के हो गये। वे अन्य कपि-किशोरों की तरह ऋषि-आश्रमों में शांत स्वभाव से विचरण करने लगे। उनके मृदुल व्यवहार से ऋषि-मुनि भी प्रसन्न रहने लगे।

हनुमान जी की माता अंजना देवी परम सदाचारिणी, तपस्विनी एवं सद्गुण-सम्पन्न माँ थीं। उन्होंने अपने लाल को प्राप्त करने के लिए जितनी तत्परता से कठोर तपस्या की थी, उतनी ही तत्परता से वे अपने प्राणप्रिय बालक का जीवन निर्माण करने के लिए भी सजग और

सावधान रहती थीं। पूजा-उपासना के उपरांत और रात्र में शयन के पूर्व वे अपने पुत्र को शास्त्रों की कथाएँ सुनाया करतीं । वे आदर्श पुरुषों के चरित्र सुनाकर अपने पुत्र का ध्यान उनकी ओर आकर्षित करतीं तथा पुनः-पुनः अपने लाल से उनके विषय में प्रश्न भी पूछती। हनुमान जी कभी ठीक उत्तर न देते तो माँ अंजना व बात पुनः दोहराकर कंठस्थ करा देतीं। भगवान के अवतारों की समस्त कथाएँ हनुमान जी के जिह्वाग्र पर थी। उन श्रेष्ठ कथाओं को वे अपने समव्यस्क कपि बालकों को अत्यंत प्रेम और उत्साहपूर्वक सुनाया करते ।

माता अंजना जब रामावतार की कथा प्रारम्भ करतीं (रामावतार के पूर्व ही त्रिकालज्ञानी वाल्मीकि जी ने रामावतार का वर्णन 'वाल्मीकि रामायण' में किया था), तब बालक हनुमान का सारा ध्यान उसी में केन्द्रित हो जाता और निद्रा उनके समीप फटकने नहीं पाती। माँ को झपकी आती तो हनुमान जी उन्हें झकझोर कर कहते: "माँ ! आगे कह, फिर क्या हुआ ?"

माता फिर कहने लगतीं। श्री राम कथा का बार-बार श्रवण करके भी हनुमान जी की तृप्ति नहीं होती थी। वे माँ से बार-बार श्रीराम-कथा सुनाने का आग्रह करते। माता अंजना उल्लासपूर्वक कथा सुनातीं और बालक हनुमान जी कथा-श्रवण से भावविभोर हो उठते। भावातिरेक से उनके नेत्रों में अश्रु भर जाते, अंग फड़कने लगते । वे सोचते कि 'यदि मैं भी हनुमान होता....।' माँ अंजना पूछतीं- "बेटा ! तू भी वैसा ही हनुमान बनेगा न !"

हनुमान जी: "हाँ माँ ! मैं अवश्य वही हनुमान बनूँगा। पर श्रीराम और रावण कहाँ हैं ? यदि रावण ने जननी सीता की ओर दृष्टिपात भी किया तो मैं उसे पीसकर रख दूँगा !"

माँ अंजना कहतीं- "बेटा ! तू भी वही हनुमान हो जा । अब भी लंका में एक रावण राज्य करता है और अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्ररूप में श्रीराम जी का अवतार भी हो चुका है। तू जल्दी बड़ा हो जा श्रीराम जी की सहायता के लिए बल और पौरुष की आवश्यकता है। तू यथाशीघ्र बलवान और पराक्रमी हो जा ।"

हनुमान जी बोले: "माँ ! मुझमें शक्ति की कमी कहाँ है ?" वे रात्रि में शय्या से कूद पड़ते और अपना भुजदंड दिखाकर माँ के सम्मुख अपार शक्तिशाली होने का प्रमाण देने लगते। माँ अंजना हँसने लगती और गोद में लेकर उन्हें थपकियाँ देने लगतीं तथा मधुर स्वर में प्रभु स्तवन सुनाते हुए सुला देतीं।

सहज अनुराग से हनुमान जी बार-बार श्रीराम-कथा श्रवण करते, जिससे उनके द्वारा भगवान श्रीराम का सतत स्मरण और चिंतन होता रहता। परिणामस्वरूप उनका श्रीराम-स्मरण उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होता गया। वे कभी अरण्य में, कभी पर्वत की गुफा में, कभी नदी के तट पर तो कभी घने वन में ध्यानस्थ होकर बैठ जाते । उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगते । मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हनुमान जी की उनके प्रति अनन्य निष्ठा अनुकरणीय है ।

[अनुक्रमणिका](#)

उपमन्यु को माँ ने बताया सर्व मनोकामनापूर्ति का उपाय - पूज्य बापू जी

पुराणों में एक कथा आती है कि उपमन्यु माँ से दूध माँगता है और तपस्विनी माँ बीजों को पीसकर पानी में घोल के उसे दे देती है कि "बेटा ! ले दूध ।"

अब वह ननिहाल में गाय का दूध पीकर आया था, पहचान गया। बोला: "माँ ! यह असली दूध नहीं है ।"

"बेटा ! हम तपस्वियों के पास गाय नहीं है, धन नहीं है। हमारे पास दूध कहाँ ? अगर दूध पीना है और खीर खानी है तो सृष्टि के जो मूल कारण है - भगवान साम्बसदाशिव, सच्चिदानंद शिव, उनकी तू आराधना कर। वे तेरी सारी मनोकामनाएँ पूर्ण करेंगे ।"

"शिवजी की पूजा कैसे करें ?"

"बेटा ! मन को लगाना है, 'ॐ नमः शिवाय ।' मंत्र जपना है ।"

उपमन्यु हिमालय में जाकर उपासना करने लगा। उपासना करते-करते उसका चित्त उपवास में पहुँचा अर्थात् जिनकी उपासना कर रहा था उनके समीप चित्त पहुँचा। शिवजी ने परीक्षा हेतु नंदी को ऐरावत के रूप में बदल दिया और स्वयं इन्द्र का रूप धारण कर उसके पास प्रकट हुए। उपमन्यु ने उनकी आवभगत की: "इन्द्रदेव ! आपका स्वागत है ! बड़ी कृपा की जो इस बालक को दर्शन दिये ।"

इन्द्ररूपधारी शिवजी ने कहा: "जो तुझे माँगना है माँग ले, मैं तुझ पर प्रसन्न हूँ ।"

"आप प्रसन्न हैं तो अच्छा है लेकिन मुझे आपसे कुछ नहीं चाहिए । मेरे इष्ट तो शिवजी हैं, मुझे तो उनके ही दर्शन करने हैं ।"

शिवजी के चित्त में हुआ कि 'यह उपासक दृढ़ है । चलो, इसकी थोड़ी और परीक्षा लें ।' अपने मुँह से इन्द्ररूपधारी भगवान शिव स्वयं अपनी निंदा करने लगे । उपासक को अपने इष्ट के प्रति, अपने साधन के प्रति कैसा दृढ़ रहना चाहिए, यह उपमन्यु की कथा से हमको सीखने को मिलता है । उसके सामने हैं तो देवेन्द्र, ऐरावत पर आये हैं, वरदान माँगने को कह रहे हैं परंतु उपमन्यु कहता है: "वरदान हम नहीं लेते, हम तो शिवजी के भक्त हैं और शिवजी की भक्ति में ही रहेंगे ।" कैसा व्रत है उसका ! कैसी है दृढ़ता !!

उपमन्यु प्रलोभन से प्रभावित नहीं हुए और शिवजी की निंदा उनको अच्छी नहीं लगी। उन्होंने अघोरास्त्र से अभिमन्त्रित भस्म इन्द्र पर फेंका। मंत्र की शक्ति कैसी रही होगी ! ऐरावत बने नंदी ने अघोरास्त्र को बीच में पकड़ लिया। भगवान शिव भीतर से प्रसन्न हुए कि 'यह इन्द्र के साथ युद्ध करने को तैयार हो गया है। इन्द्र को भस्म करने को तैयार है लेकिन मेरी भक्ति छोड़ने की इसकी रुचि नहीं है । फिर उपन्यु ने स्वयं को भस्म करने के लिए अग्नि की धारणा

की परंतु शिवजी ने उसकी धारणा को शांत कर दिया । शिवजी अपने असली रूप में प्रकट हुए और ऐरावत की जगह पर नंदी प्रकट हो गया । उपमन्यु ने भगवान की यह लीला देखकर उनसे क्षमा-याचना की लेकिन भगवान कहते हैं- "इसमें तेरा कसूर नहीं है, मैं तो तेरी परीक्षा ले रहा था कि तेरे जीवन में व्रत कैसा है, दृढ़ता कैसी है। पुत्र ! तू दृढ़व्रतधारी है । मैं तझ पर प्रसन्न हूँ ।"

शिवजी ने उपमन्यु का हाथ पकड़ के माँ पार्वती के हाथ में दिया। पार्वती जी ने उपमन्यु के सिर पर अपना कृपापूर्ण वरदहस्त रखा: "बेटा ! तुझे दूध चाहिए था न ! और खीर भी खानी है ? अब तुझे जो भी चाहिए होगा, तेरे कुछ भी असम्भव नहीं है ।"

इस कथा से यह समझना है कि जिसके जीवन में संयम, व्रत, एकाग्रता और इष्ट के प्रति दृढ़ निष्ठा है, उसके जीवन में कुछ भी असम्भव नहीं है ।

जिसके जीवन में दृढ़ता नहीं है वह चाहे अभी कितना भी ऊँचा दिख रहा हो लेकिन वह सरक जायेगा। अपने सिद्धान्त की दृढ़ता होनी चाहिए । अपनी उपासना, व्रत, नियम के लिए कुछ तो दृढ़ता होनी चाहिए ।

अनुक्रमणिका

श्री आनंदमयी माँ पर पड़ा माता-पिता के आध्यात्मिक जीवन का प्रभाव

श्री आनंदमयी माँ के पिता विपिनबिहारी भट्टाचार्य एवं माता श्रीयुक्ता मोक्षदासुंदरी देवी (विधुमुखी देवी) - दोनों ही ईश्वर-विश्वासी, भक्तहृदय थे। माता जी के जन्म से पहले व बहुत दिनों बाद तक इनकी माँ को सपने में तरह-तरह के देवी-देवीताओं की मूर्तियाँ दिखती थीं और वे देखतीं कि उन मूर्तियों की स्थापना वे अपने घर में कर रही हैं। आनंदमयी माँ के पिताजी में ऐसा वैराग्यभाव था कि इनके जन्म के पूर्व ही वे घर छोड़कर कुछ दिन के लिए बाहर चले गये थे और साधुवेश में रह के हरिनाम-संकीर्तन, जप आदि में समय व्यतीत किया करते थे।

माता जी के माता-पिता बहुत ही समतावान थे। इनके तीन छोटे भाइयों की मृत्यु पर भी इनकी माँ को कभी किसी ने दुःख में रोते हुए नहीं देखा। माता-पिता, दादा-दादी आदि के संस्कारों का प्रभाव संतान पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूप से पड़ता ही है। माता जी बचपन से ही ईश्वरीय भावों से सम्पन्न, समतावान व हँसमुख थीं।

आनंदमयी माँ को आध्यात्मिक संस्कार तो विरासत में ही मिले थे अतः बचपन से ही कहीं भगवन्नाम-कीर्तन की आवाज सुनाई देती तो इनके शरीर की एक अनोखी भावमय दशा हो जाती थी। आयु के साथ इनका यह ईश्वरीय प्रेमभाव भी प्रगाढ़ होता गया। लौकिक विद्या में तो माता जी का लिखना-पढ़ना मामूली ही हुआ। वे विद्यालय बहुत कम ही गयीं। परंतु संयम,

नियम-निष्ठा से व गृहस्थ के कार्यों को ईश्वरीय भाव से कर्मयोग बनाकर इन्होंने सबसे ऊँची विद्या - आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या को भी हस्तगत कर लिया।

गुरु के प्रति सर्वतोभाव से आत्मसमर्पण

सन् 1909 में 12 साल 10 महीने की उम्र में माता जी का विवाह हो गया। माता जी एक योग्य बहू के करने योग्य सभी काम करती थीं। माँ हर-रोज़ साधन-क्रिया नियम से करती थीं। वे दिन में गृहस्थी के सभी काम करतीं - पति की सेवा, भोजन बनाना, घर में बुहारी आदि और रात में कमरे के एक कोने में साधना करने बैठ जाती थीं। इन्हें दीक्षा के बाद 5 महीने तक योग की क्रियाएँ स्वतः होती रहीं, जो साधारण लोगों की समझ में अनोखी थीं। तरह-तरह के आसन, मुद्राएँ, पूजा आदि अपने-आप हो जाते थे। उस समय की बात बताते हुए माँ कहती हैं- "तब आसन मुद्राएँ होते थे। खाना-पीना गुरु की इच्छा से करती थी। स्वाद-बोध नहीं होता था। यह भाव गुरु पर निर्भर रहने से आता है।

गुरु पर सर्वतोभाव (सम्पूर्णरूप) से आत्मसमर्पण कर देना चाहिए। अपने को उनके हाथ का खिलौना समझना चाहिए। जो कुछ होना है वह गुरु की इच्छा से अपने-आप हो जायेगा।"

यौगिक क्रियाओं से अनजान परिजनों में से कुछ का कहना था कि 'यह भूत लीला है।' कुछ लोग समझते थे कि 'यह एक रोग है।' अपनी-अपनी समझ से उनके पति भोलानाथ जी को किसी झाड़-फूँकवाले या अच्छे डॉक्टर को दिखाने की सलाह देते थे। भोलानाथ जी ने लाचार होकर एक-दो झाड़-फूँकवालों को दिखाया लेकिन वे लोग माँ का भाव देख के 'माँ-माँ' कहते हुए इनको नमस्कार कर चलते बने।

माँ की स्वरूपनिष्ठा तथा साधना का सारसूत्र

माँ की निष्ठा ऐसी थी की एक बार किसी संबंधी के यह पूछने पर कि "आप कौन हैं ?" माँ ने गम्भीर स्वर में कहा: "पूर्ण ब्रह्म नारायण ।"

आनंदमयी माँ के पास रहने वाली उनकी एक खास सेविका ने एक बार माँ से पूजन की आज्ञा ली। सेविका कहती हैं- "जिस दिन से मेरा माँ के चरणों पर फूल चढ़ाना (पूजन करना) शुरू हुआ, उस दिन से माँ ने मुझे और किसी देवता के चरणों में अंजलि देने को मना कर दिया। तभी से सिर्फ इन (माँ) के चरणों को छोड़कर मैं और कहीं अंजलि नहीं देती ।" यह घटना भी आनंदमयी माँ की स्वरूपनिष्ठा को दर्शाती है कि स्वयं से भिन्न कोई दूसरा तत्त्व है ही नहीं। और यह एक निष्ठावान शिष्य के लिए साधना का उत्तम मार्ग भी है कि **हयात ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष को सद्गुरु रूप में पाने के बाद उसके लिए फिर और किसी की पूजा बाकी नहीं रहती।** गुरुवचन ही उसके लिए कानून हो जाता है, सब मंत्रों का मूल तथा सर्व सफलताओं को देने वाला हो जाता है। निश्चलदासजी महाराज ने कहा है:

हरिहर आदिक जगत में पूज्य देव जो कोय ।

सद्गुरु की पूजा किये सबकी पूजा होये ॥ ('विचारसागर' वेदांत ग्रंथ)

भगवान को पाने का सबसे सीधा रास्ता

भगवान को पाने का सबसे सीधा रास्ता कौन सा है ?

माँ ने बताया: "गुरु जो बतावें वह ही करें । गुरु के आदेश का पालन करके चलने से भगवत्प्राप्ति होगी ।"

आनंदमयी माँ को गुरुप्रदत्त साधना ने आत्मपद में जगा दिया। बड़े-बड़े संत इनका आदर करते थे। इंदिरा गांधी, पंडित नेहरू भी आनंदमयी माँ का आदर करते थे, आशीर्वाद लेते और इनके चरणों में नतमस्तक होते थे।

हे भारत की देवियो ! अपनी महिमा को पहचानो। स्वयं हरि-गुरुभक्तिमय जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु के सत्संग आदि से अपनी संतानों में भी ऐसे दिव्य संस्कारों का सिंचन करो कि वे स्वयं को जानने वाले , प्रभु को पाने वाले बनें।

[अनुक्रमणिका](#)

मीराबाई को मिले भक्ति के संस्कार, प्रकट किया ईश्वर साकार

संत-सेवी, सत्संगी, भगवत्परायण, संस्कारी माता-पिताओं का समाज पर बड़ा उपकार है। ऐसे ही अन्य परिजन जो सन्तानों में उत्तम संस्कारों के सिंचन हेतु प्रयासरत रहते हैं, वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

मीराबाई के दादा राव दूदा जी संतों में बड़ी आस्था रखते थे। वे किसी-न-किसी संत को मेड़ता आमंत्रित करके उनकी सत्संग-सरिता में पूरे राज-परिवार सहित अवगाहन करके धन्यता का अनुभव करते थे। राव दूदा जी की श्रद्धा भक्ति के कारण कोई-न-कोई संत उनके यहाँ पधारते रहते थे। मीरा जब माँ के गर्भ में थीं उस समय दूदा जी ने एक संत से भागवत कथा करने के लिए प्रार्थना की और अपनी पुत्रवधू झालीजी (वीर कुँवरजी) को मन लगाकर प्रवचन सुनने को कहा। 9 महीनों तक कथा चलती रही।

झाली जी बड़ी ही श्रद्धा व एकाग्रता के साथ कथा श्रवण करतीं और बड़े ही गूढ़ प्रश्न पुछवातीं, जैसे एक दिन पुछवाया था कि 'जो पूर्णकाम है उसे **एकोऽहं बहुस्याम्**' की कामना क्यों हुई ?' एक दिन और पुछवाया कि 'यदि माया भगवान के समय टिक नहीं सकती तो क्या सृष्टि किसी और ने की है ?'... इस प्रकार उन्होंने आध्यात्मिक जिज्ञासाभरे प्रश्न किये। इससे उनकी भगवत्संबंधी जिज्ञासा व सूक्ष्म मति स्पष्ट होती है। झाली जी के जिज्ञासाभरे प्रश्नों से यह लगता है कि आने वाली संतान अवश्य महामना होगी।

संवत् 1561 (1504 ई.), आश्विनी पूर्णिमा को झाली जी के यहाँ मीराबाई का जन्म हुआ । झाली जी ने संतान को बचपन से ही भगवद्भक्ति के संस्कार दिये । 6 माह की मीरा एक

दिन ऐसी रोने लगी कि किसी प्रकार चुप नहीं होती थीं। बहलाने के सभी प्रयत्न विफल हुए तो दूदा जी उसे लेकर मंदिर गये। ठाकुर जी पर दृष्टि पड़ते ही वह चुप हो गयी और उन्हें एकटक देखने लगी। उस दिन से उसके रोने पर उसे चुप कराने का यह सरल उपाय मिल गया। मीरा के भक्ति के संस्कारों का दूदा जी पोषण करने लगे। मीरा एक वर्ष की हुई तो उसने छोटे-छोटे कितने ही कीर्तन सीख लिये थे। वह अपनी तोतली बोली में गाकर दूदा जी को भजन सुनाती थी। जब-जब संतों का पधारना होता, मीरा दूदा जी की प्रेरणा से उन्हें प्रणाम करती। कथा-वार्ता के समय शांत बैठकर उसे सुनती। बचपन में उसे एक संत से भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति मिली। वह उसे हमेशा अपने साथ रखती थी ।

एक बेटी के कितने बीँद ?

बचपन में मीराबाई ने माँ से अपने पति के बारे में पूछा तब माँ ने यह बताया कि 'तेरा पति तो गिरधर गोपाल है।' तब से यही उसके जीवन का मूलमंत्र बन गया। मेवाड़ के महाराज कुँवर से सगाई होने की बात मीरा ने सुनी तो दूदा जी के पास जाकर बोली: "एक बेटी के कितने बीँद (पति) होते हैं ?"

दूदा जी: "एक ही ।"

"मेरा पति एक पति गिरधर गोपाल है, फिर मेरा विवाह मेवाड़ के राजकुमार से क्यों ?" - मीरा रोते हुए बोली ।

"तू चिंता मत कर । मेरे जीते जी तेरा विवाह नहीं होगा । तेरा वर गिरधर गोपाल है और वही रहेगा । मेरे मरने के बाद यदि ये लोग तेरा विवाह कर दें तो तू घबराना मत । तेर सच्चा पति तो वह अंतर्यामी है, भले तन का कोई और पति बने । मन की बात उससे छिपी नहीं है बेटी ! तू निश्चिंत रह ।" मीरा के मन को तसल्ली मिली।

अनुक्रमणिका

मेरे गुरु कौन ?

एक बार गुरुपूर्णिमा से एक दिन पहले मीराबाई सोच रही थीं कि 'शास्त्र और संत कहते हैं कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होता । गुरु ही परम तत्त्व के दाता है । तब मेरे गुरु कौन ?' मीराबाई गुरुप्राप्ति के लिए व्याकुल हो गिरधर से प्रार्थना करने लगीं ।

मोह लागि लगन गुरु चरनन की ।

चरन बिना मोहे कछु नहिं भावे, जग माया सब सपनन की ॥

भवसागर सब सूख गयो है, फिकर नहीं मोही तरनन की ।

मीरा के प्रभु गिरधर नागर, आस लगी गुरु सरनन की ॥

रात को प्रार्थना करते-करते मीरा सो गयीं । स्वप्न में कुछ संकेत मिला और सुबह उठकर मीराबा ने निश्चय किया कि 'गिरधर गोपाल ! आज तुम जिन संत के रूप में पधरोगे, मैं उनको ही गुरु मान लूँगी ।' सायंकाल अकस्मात् संत रैदास जी पहुँचे । मीरा ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रणाम किया और स्वयं को शिष्या के रूप में स्वीकारने हेतु विनती की ।

सद्गुरु तो परम दयालु होते हैं। गुरु रैदास जी ने मीराबाई की प्रार्थना स्वीकार कर ली। उनका सत्संग सुन के मीराबाई को बहुत शांति का अनुभव हुआ । वे कहती हैं -

....जनम-जनम का सोया मनुवा, सतगुरु सबद सुन जागा ।

गुरुदेव जाने लगे तो मीरा बहुत उदास हो गयीं। रैदास जी समझाते हुए बोले: "बेटी ! सद्गुरु से प्राप्त भगवन्नाम ही निसेनी (सीढ़ी) है। और ईश्वरप्राप्ति की लगन ही प्रयास है। दोनों ही बढ़ते जायें तो अगम अटारी (परम पद - परमात्मा) घट (हृदय) में प्रकाशित हो जायेगी । इन्हींके सहारे उसमें पहुँच के अमृतपान कर लोगी । समय जैसा भी आये, पाँव पीछे न हटे, फिर तो बेड़ा पार है ।"

मीराबाई के माता-पिता तो उनकी शादी करके निश्चित होना चाह रहे थे लेकिन मीराबाई का मन भक्ति में लग रहा था । उन्होंने कहा है:

मात-पिता-कुटुम्ब-कबीला, सब मतलब के गरजी¹ ।

मीरा के रविदास गुरु हैं, हरि की मिली डगर जी ॥

1 स्वार्थी ।

मीरा तो सद्गुरु से प्राप्त मार्गदर्शनानुसार साधना में लग गयीं। सद्गुरु का दर्शन सत्संग मिलने के मीराबाई ने अपने पदों में जगह-जगह पर सद्गुरु की महत्ता का वर्णन किया है:

सतगुरु मिलि या सुंज पिछानी¹, ऐसा ब्रह्म मैं पाती ।

सगुरा सूरु अमृत पीवै, निगुरा प्यासा जाती ॥

1 उस भेद को जान लिया

आगे मीराबाई ने कहा है:

रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हा सुरत सहदानी² ।

मैं मिली जाय पाय पिय अपना, तब मोरी पीर बुझानी ॥

2 आत्मा की पहचान

जिस आनंद में संत रैदास रमण करते थे, उस आनंद की एक बूँद मीरा को मिली तो वे भी उसमें सराबोर रहने लगीं । संतों महापुरुषों का बाह्य वेश या व्यवहार देखकर ही उनके बारे में कुछ भी अनुमान लगा लेने वाले अथवा निंदकों के चक्कर में आने वाले यूँ ही कोरे, अभागे रह जाते हैं, संतों के कृपा-प्रसद को तो वे ही पचा पाते हैं जो निरभिमानी होकर उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होते हैं। मीरा ने पहचाना था रैदास जी को । उन्होंने सच्ची श्रद्धा से रैदास जी के श्रीचरणों में सिर झुकाया था।

मीरा के साथ भी वही हुआ जैसा भक्तों के साथ अनादि काल से होता आया है । उन्हें तरह-तरह से सताया जाने लगा.... संत रैदास जी के बारे में झूठी, घृणित बातें बोलकर उन्हें बहकाने के पुरजोर प्रयास किये जाने लगे।

हजारों विघ्न-बाधाओं के बीच भी मीराबाई गुरु-ज्ञान का सम्बल ले के प्रभु-प्रेम में मग्न होकर नाचती रहीं, गुनगुनाती रहीं, मुस्कराती रहीं औ अपने गुरुदेव के कृपा-प्रसाद को पचाने में सफल हो गयीं ।

मीराबाई का जीवन-चरित्र हमें ईश्वरप्राप्ति के मार्ग पर दृढ़ता के साथ चलने की प्रेरणा देता है और मीराबाई की माँ और दादा का व्यवहार हम अपने बच्चों को किस प्रकार भगवद्भक्ति के सुसंस्कारों से रँगें, इस बात की सच्ची, सुहानी सीख देता है ।

अनुक्रमणिका

गवरीबाई की माँ थी सयानी, बना दिया उसे गिरधर की दीवानी

संवत् 1825 में डूंगरपुर (प्राचीन गिरिपुर) गाँव (राजस्थान) में एक कन्या का जन्म हुआ, नाम रख गया गवरी । 5-6 साल की उम्र में ही उसका विवाह कर दिया गया। विवाह के एक वर्ष बाद ही उसके पति का देहांत हो गया। इतनी छोटी उम्र में विवाह क्या, पति कय, विधवापना क्या ? - इन सबका उस बालिका को क्या पता !

समय बीता । गवरी बाई ने युवावस्था में प्रवेश किया। उसकी सहेलियाँ सोलह-श्रृंगार करके ससुराल जाने लगीं । उन्हें सजा देखकर गवरी ने अपनी माँ से कहा: "माँ ! मुझे भी इनकी तरह सजना है ।"

"बेटी ! तेरी बहुत छोटी उम्र ही शादी हो गयी थी। कुछ समय बाद तेरा पति मर गया था। इसलिए तू ऐसा श्रृंगार नहीं कर सकती।"

"माँ ! ये सब सहेलियाँ ससुराल जा रही हैं, मुझे कब जाना है ?"

"बेटी ! तुझे अब कन्हैया के पास ही रहना है । वही सबका सच्चा स्वामी है । किसी का सौभाग्य जल्दी छिन जाता है तो किसी का बाद में, एक दिन तो सबका छिनेगा ही । मीरा की तरह तू गिरधर गोपाल को ही वर ले । गोपाल को वर लेते हैं उनका सौभाग्य अमर रहता है ।"

बस, तब से उसे भगवद्भक्ति का रंग लग गया । धीरे-धीरे नश्वर संसार से उनका चित्त ऊब गया और विमल विवेक जगा । अब तो वे माधव की मस्ती में ही मस्त रहने लगीं ।

हरि कुं गाऊं मैं तो हरि कुं रिझाऊँ रे,

जगत झाल मैं चित न लगाऊँ रे।

अखंड आनंद तज अल्प न चहाऊँ रे,

दास गवरी हरि चरण में जाऊँ रे।।

सदगुरु की प्राप्ति एवं साधना में तीव्र उन्नति

पूर्व के संस्कार कहो या भक्ति का प्रभाव कहो, गवरी बाई के कंठ से प्रभुभक्ति के ऐसे सुंदर पद निकलने लगे । गवरीबाई के परम सौभाग्य का उदय तो तब हुआ जब उन्हें एक आत्मज्ञानी ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष की शरण मिली। उनके गुरुदेव ने उन्हें ब्रह्मज्ञान व योगदर्शन का उपदेश दिया । संसार से उपरा और सुख-भोगों की अनासक्ति से युक्त गवरीबाई के परिपक्व हृदय में गुरु के वचन गहरे उतर जाते । सुनते-सुनते वे अहोभाव से भर जातीं और घंटों उसी भाव खोयी रहतीं । अब वे जो भी पद गातीं उसमें से भक्ति के साथ तत्त्वज्ञान का भी प्रकाश मिलने लगा । धीरे-धीरे गवरीबाई की भक्ति की सुवास राजस्थान के गाँव-गाँव में फैलने लगी । लोग उन्हें मीराबाई का अवतार मानने लगे।

[अनुक्रमणिका](#)

गवरीबाई की अनन्य भक्ति देख राजा हुआ नतमस्तक

एक बार भक्तों के साथ कीर्तन करती हुई गवरीबाई गोकुल वृंदावन की ओर जाते हुए जब जयपुर के नजदीक पहुँचीं तो राजा प्रतापसिंह ने उनका भावभीना स्वागत करते हुए कहा: "देवी ! जयपुर के राज-आँगन को भी अपनी चरण-रज से पावन कर दीजिये ।"

गवरीबाई ने राजा का आमंत्रण स्वीकार किया । प्रतापसिंह के मन में एक प्रश्न उठा कि 'सब लोग गवरीबाई को मीराबाई का अवतार मानते हैं, कहते हैं कि- 'इनकी आँखें अहर्निश (रात-दिन) श्रीहरि के दर्शन करती हैं ।' - यह बात कितनी सत्य है ?'

जयपुर के राजमहल में भगवान श्रीगोविन्द जी का मंदिर है । राजा ने पुजारी से कहा: "कल गोविंद जी का ऐसा सुंदर श्रृंगार करो कि पहले कभी नहीं हुआ हो और इस बात का खयाल रखना कि किसी को श्रृंगार के बारे में पहले से पता न चले ।"

सुबह हुई, जयपुर के राजमहल में गवरीबाई का आगमन हुआ । राजा-रानी ने उनका आदर-सत्कार किया । फिर गवरीबाई के साथ ज्ञानचर्चा होने लगी । अंत में गवरीबाई ने कहा: "सच कहूँ, वेद-पुराणों की हम कितनी भी बातें करें लेकिन जब तक हृदय पवित्र नहीं होता, तब तक हरि की झाँकी नहीं होती । जिसका हृदय स्फटिक जैसा निर्मल होता है, वहीं हरि विराजते हैं ।"

हरि-दर्शन की बात आते ही गवरीबाई ने प्रतापसिंह से पूछा: "महाराज ! मैंने सुना है कि आपके महल में गोविंदजी की सुंदर मूर्ति है । अभी दर्शन को कितनी देर है ?"

राजा गवरीबाई की परीक्षा लेना चाहता था । उन्होंने कहा: "अभी तो मंदिर के पट भी नहीं खुले हैं । आप तो ठाकुर जी की मीरा हो । आप यहीं बैठे-बैठे बताइये कि आज ठाकुर जी का श्रृंगार कैसा है ?"

गवरीबाई ने बैठे-बैठे ठाकुर जी के पूरे श्रृंगार का वर्णन कर दिया परंतु एक बात उन्होंने नहीं कही ।

राजा: "आपने जैसा कहा, ठाकुर जी का आज वैसा ही श्रृंगार है किंतु उनके मुकुट का वर्णन तो आपने किया नहीं ।"

"महाराज ! ध्यान में मुझे ठाकुर जी के जैसे दर्शन हुए वैसा ही मैंने वर्णन किया ।"

गोविंदजी के मंदिर के द्वार खोले गये । देखा तो सचमुच ठाकुर जी के मस्तक पर मुकुट नहीं था । वह पीछे गिर गया था । राजा गवरीबाई के चरणों में गिर पड़ा । उसका हृदय गवरीबाई की अनन्य भक्ति देखकर गद्गद हो गया ।

अनुक्रमणिका

सदगुरु के ज्ञान से अज्ञान-आवरण हटा

गवरीबाई लिखती हैं कि उनके गुरु के उपदेशों से उन्हें ज्ञान का प्रकाश प्राप्त हुआ है। उस प्रकाश से अज्ञान का अंधकार समाप्त हो गया है। वे गुरु महिमा का वर्णन करते हुए कहती हैं-

ज्ञानघटा घेरानी अब देखो, सतगुरु की कृपा भई मुझ पर शब्द ब्रह्म पहचानी ।

गवरीबाई पर गुरुकृपा ऐसी बरसी कि उनके लिए अब भगवान केवल श्रीकृष्ण की मूर्ति तक ही सीमित न रहे, गुरुज्ञान ने उनके अज्ञान-आवरण को चीर डाला और उन्हें घट-घट में परमात्मा के दीदार होने लगे ।

एक बाल-विधवा कन्या सदगुरु के ज्ञान व ज्ञानभक्ति से इतनी ऊँची हो गयी कि जयपुर का राजा प्रतापसिंह उनके चरणों में गिरकर अपना भाग्य बनाता है । कोई चरणों में गिरे - यह बड़ी बात नहीं है, बड़ी बात तो विषय-विकारों से अपने को बचाकर भगवद्-सत्ता में एकाकार होना है ।

अनुक्रमणिका

घायल सालबेग को थी मौत की चाह, माँ ने दिखायी भक्ति की राह

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

कटक (ओड़िशा) की एक घटना है । उस राज्य का मुगल सरदार लालबेग वहाँ के राजा की कमजोरी का लाभ उठाकर उन्हें धोखे से परास्त करके खुद राजगद्दी पर चढ़ बैठा । वह जितना अहंकारी था, उतना ही कामी-दुराचारी भी था ।

एक बार वह कहीं से सेना लेकर आ रहा था । एक विधवा ब्राह्मणी युवती नदी में कपड़े धो रही थी । वह बहुत सुंदर थी । लालबेग बलपूर्वक अपहरण कर उसे महल में ले गया ।

लालबेग ने धमकी आदि से उसे अपनी भोग्या बना लिया । उसके गर्भ से जिस बालक का जन्म हुआ उसका नाम रखा गया - सालबेग ।

पिता ने सालबेग को युद्ध का प्रशिक्षण दिया । युद्ध में सालबेग ऐसे लड़ता मानो रोबोट लड़ रहा हो । एक बार युद्ध के समय शत्रु के किसी सैनिक ने पीछे से उसके सिर पर तलवार से इतनी जोर से वार किया कि वह बुरी तरह घायल होकर मूर्च्छित हो गया । उसका काफी इलाज किया गया किंतु कोई लाभ नहीं हुआ । स्वार्थी पिता लालबेग ने देखा कि 'अब यह किसी काम का नहीं है' तो उसे महल के एक कोने में धकेल दिया ।

जब राजा ही उपेक्षा कर दे तो मंत्री और नौकर कब तक सँभालें ? अब केवल ब्राह्मणी माँ ही उसकी देखभाल करने लगी ।

एक दिन सालबेग ने कहा: "माँ ! बड़ी पीड़ा हो रही है । अब तो मैं मर जाऊँ तो अच्छा है ।"

माँ- "नहीं बेटा ! तेरी पीड़ा तो मैं दिन रात देख रही हूँ किंतु आत्महत्या करना तो कायरता की पराकाष्ठा है ।"

सालबेग: "माँ ! मैं युद्ध करके शत्रुपक्ष को हराता था तो पिता कहते थे: "शाबाश-शाबाश !" अब जब घायल होकर पड़ा हूँ तो कोई देखता तक नहीं है । यह संसार कितना स्वार्थी है !"

माँ- "इस संसार की यही रीति है । सारा संसार स्वार्थ से भरा है । केवल भगवान और भगवान को पाये हुए संत ही निःस्वार्थी होते हैं ।

बेटा ! तेरे बाप ने मुझे भी जबरदस्ती अपनी पत्नी बनाया था । मैं जाति से हिन्दू हूँ । मैं लाचार अबला क्या कर सकती थी ?"

माँ की आँखों में अश्रुधाराएँ बह चलीं..... बेटा भी माँ की करुणा गाथा सुन के रो पड़ा ।

माँ- "दुःखों, विघ्नों से जूझते रहना चाहिए किंतु आत्महत्या का विचार कदापि नहीं करना चाहिए । ऐसे हीन विचार आये तो उन्हें काटकर फेंक देना चाहिए ।"

"किन्तु माँ ! मेरी पीड़ा तो देख । मैं कैसे जिऊँगा ? क्या करूँ ?"

"बेटा ! मेरे भगवान अगर चाहें और तेरी श्रद्धा दृढ़ हो तो 12 महीने नहीं, 12 सप्ताह नहीं, 12 दिन में ही तू ठीक हो सकता है मेरे लाल !"

"माँ ! क्या मैं सचमुच 12 दिन में ठीक हो सकता हूँ ? माँ ! तू जो कहेगी मैं वही करूँगा ।"

कभी-कभी भक्त की श्रद्धा से भगवान उसके हृदय से मंगलमय बुलवा देते हैं ।

माँ ने कहा: "बेटा ! श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे ! हे नाथ नारायण वासुदेव !!....' यह भगवन्नाम-सुमिरन कर और भगवान श्रीकृष्ण का चिंतन कर ।"

फिर माँ ने सालबेग को घुँघराले बालों वाले नटखट श्रीकृष्ण की मधुर लीलाएँ सुनायीं । सालबेग ने ध्यान, जप आदि शुरू कर दिया । 10 दिन हो गये किंतु अभी तक घाव में कुछ भी फर्क नहीं पड़ा था । पीड़ा बढ़ती जा रही थी । 11वें दिन की सुबह हुई ।

सालबेग: "माँ ! तेरे कृष्ण ने मुझे ठीक नहीं किया ।"

सालबेग नाम-जप करता रह.... 12 वें दिन के प्रभाव को सालबेग स्वप्न में क्या देखता है कि उसके सामने नंदनंदन मंद-मंद मुस्करा रहे हैं और कह रहे हैं- "जरा सा घाव मिटाने के लिए तू परेशान हो रह है ? ले यह भभूत लगा ले । मैं 84 लाख जन्मों का घाव मिटा सकता हूँ, तेरा यह सिर का जरा सा घाव है ।"

स्वप्न में भभूत मिली, स्वप्न में ही उसने सिर पर मली । घाव भर गया । उसकी आँखें खुलीं और वह चिल्लाया: "माँ ! माँ ! तेरे कन्हैया ने भभूत दी और मेरा घाव भर गया ! देख माँ ! देख !!

माँ ! अब मैं उसी नटखट नंदकिशोर के गुणानुवाद में सारा जीवन लगा दूँगा ।"

"बेटा ! भगवान कृष्ण की भक्ति करके अपने कृष्ण तत्त्व (परमात्म-तत्त्व को प्रकट कर ले । इसी के लिए यह मनुष्य जीवन मिला है ।"

"माँ ! इस जहाँ में सब मतलब के साथी हैं । अब तू मुझे आज्ञा दे । मैं संन्यासी होकर अपना जीवन सफल करूँगा । मैं अब पैदल ही जगन्नाथजी की यात्रा करूँगा ।"

माँ ने कहा: "बेटा ! वही जीवन सफल है जो भगवान के काम आ जाय ।"

सालबेग ने माता के चरण स्पर्श किये और चल पड़ा। उसके बाद माँ भी महल में नहीं दिखाई दी। सालबेग ने भगवान जगन्नाथ की भक्ति के जो भजन बनाये, वे आज भी जगन्नाथपुरी, कटक और ओड़िशा के कई इलाकों में बड़े प्रसिद्ध हैं।

कहाँ तो क्रूर, लड़ाकू पिता का योद्धा बेटा सालबेग.... सिर में घाव हो गया, पिता ने उपेक्षा कर दी, जीवन से हताश-निराश होकर आत्महत्या का विचार करने लगा और कहाँ माँ से कृष्णभक्ति के संस्कार मिले तो शरीर का घाव तो मिटाया ही, जन्म-मरण के घाव को मिटाने के रास्ते पर भी चल पड़ा ! मानव के मन में अथाह सामर्थ्य है, जरूरत है तो किसी मार्गदर्शक की ताकि उस सामर्थ्य के खजाने को खोलने की युक्ति मिल जाय। ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के पास होती हैं वे युक्तियाँ ! अगर कोई जिज्ञासु हो और तत्परतापूर्वक लग पड़े तो शीघ्र ही काम बन जाय.....

[अनुक्रमणिका](#)

ऐसे गणितज्ञ और वैज्ञानिक की महानता के पीछे किनकी शिक्षा-प्रेरणा ?

महान गणितज्ञरामानुजन

एक कक्षा में अध्यापक गणित पढ़ा रहे थे। उन्होंने श्यामपट्ट (ब्लैकबोर्ड) पर 3 केले के चित्र बनाये और छात्रों से पूछा: "यदि हमारे पास 3 केले और 3 ही विद्यार्थी हों तो प्रत्येक को कितने केले मिलेंगे ?"

एक विद्यार्थी तपाक से बोल पड़ा: "एक केला मिलेगा।"

विद्यार्थी ने पूछा: "गुरुजी ! यदि शून्य केलों को शून्य बच्चों में बराबर-बराबर बाँटा जाय, क्या तब भी प्रत्येक बच्चे को एक-एक केला मिलेगा ?"

यह सुनते ही सारे विद्यार्थी हँस पड़े कि 'क्या मूर्खतापूर्ण प्रश्न है !'

अध्यापक बोले: "इसमें हँसने की कोई बात नहीं है। क्या आपको मालूम है कि यह विद्यार्थी क्या पूछना चाहता है ? यह जानना चाहता है कि यदि शून्य को शून्य से विभाजित किया जाय तो भी क्या परिणाम एक ही होगा ?"

यह गणित का एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल था। कुछ गणितज्ञों का विचार था कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर उत्तर शून्य होगा जबकि अन्य लोगों का विचार था कि उत्तर एक होगा। अंत में इस समस्या का निराकरण भारतीय वैज्ञानिक भास्कर ने किया। उन्होंने सिद्ध किया कि 'शून्य को शून्य से विभाजित करने पर परिणाम शून्य ही होगा।' यह विद्यार्थी इसी तथ्य की ओर हमें ले जाना चाहता है।

इतनी छोटी उम्र में इतना सूक्ष्म सवाल पूछने वाला वह बालक था श्रीनिवास रामानुजन, जो आगे चलकर भारत के विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञ के रूप में प्रसिद्ध हुए। अत्यंत निर्धन परिवार में जन्मे रामानुजन ने 32 वर्ष की आयु में गणित जगत में आसाधारण कार्य किया। उनके बनाये गणित के एक-एक नमूने को हल करने में विश्व के बड़े-बड़े गणितज्ञों को कई वर्ष लग गये। वे इतने महान कैसे बने ?

रामानुजन बचपन से अकेले में शांत बैठने का अभ्यास करते थे। जाने-अनजाने में उनकी वृत्ति आज्ञाचक्र में पहुँच जाती थी। संकल्प-विकल्प शांत होने से बुद्धि को बल मिलता है। वे स्वभाव से ही मननशील व मितभाषी थे। रामानुजन अपनी पवित्र, सत्संगी माता के चरणस्पर्श कर आशीर्वाद पाने के बाद ही दिन की शुरुआत करते थे। उनकी माँ गंदी फिल्मों, गंदे साहित्य, नाटकों आदि से परे रहने वाली सत्संगी माता थीं। वे सत्संग, गुरुमंत्र-जप और भ्रूमध्य के ध्यान में आगे बढ़ी थीं। उन्होंने गुरु के सत्संग के ज्ञान से अपनी समझ को सम्पन्न किया था। ऐसी सत्संगी माताओं के बच्चे महाधनभागी हैं !

रामानुजन को अध्यात्म, धार्मिक आचरण, ईश्वरभक्ति माँ से मिली थी। वे व्यर्थ की बातों में अपना समय नष्ट नहीं करते थे। घर पर वे रामायण, महाभारत की कथाएँ बड़े मनोयोग से सुनते थे। उपनिषदों में उठाये गये गहन प्रश्न व उनके समाधानों को उन्होंने बड़ी गहराई से आत्मसात किया था। तभी तो बाल्यावस्था में ही वे ऐसे गूढ़ प्रश्न पूछते थे: "संसार में प्रथम पुरुष कौन था ? धरती और आकाश के बीच की दूरी कितनी है ?" शैशवकाल में उनकी बुद्धि शून्य के विशेष स्थान की ओर संकेत कर रही थी।

एक बार रामानुजन ने अपने मित्र से कहा था: "यदि कोई गणितीय समीकरण अथवा सूत्र किसी भगवद्-विचार से मुझे नहीं भर देता तो वह मेरे लिए निरर्थक है।"

विश्वप्रसिद्ध गणितज्ञ प्रोफेसर गोडफ्रे हार्डी ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि 'रामानुजन अपने इंग्लैंड प्रवास के दौरान भी पूर्ण शाकाहारी ही रहे और सदा अपना भोजन स्वयं बनाते थे।' वहाँ भी उनको एकांत में तथा नदी-किनारे रहना अच्छा लगता था। वे नित्य प्रातः स्नान के बाद तिलक लगाकर पूजा करते और नियमित ध्यान का अभ्यास करते थे। रामानुजन के जीवन के मूल में आध्यात्मिकता ही थी, जिससे वे लौकिक जगत में भी ऊँचाइयों पर पहुँच सके।

अनुक्रमणिका

विश्वप्रसिद्ध वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु

ऐसे ही विश्वप्रसिद्ध जगदीशचन्द्र बसु, जो जीव-विज्ञान और भौतिक विज्ञान के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक थे, उनकी माँ ने कहा: "बेटा ! संध्या हो गयी है। इस पेड़ की नींद खराब न करो।" माँ ने सत्संग में सुनी हुई बातें बतायीं।

बालक ने बड़े होने पर वैज्ञानिक ढंग से खोज कर के साबित कर दिखाया कि पेड़-पौधों को भी नींद आती है तथा सुख-दुःख होता है। माली के मन में पौधों को पानी पिलाने का भाव आते ही पौधे खुश हो जाते हैं और पेड़ काटने वाले को देखकर पेड़-पौधे कम्पायमान होते हैं, डरते हैं। सूक्ष्म खोज के धनी जगदीशचन्द्र बसु की सत्संगी माँ को धन्यवाद जाता है।

पूज्य बापू जी कहते हैं- "बिना आध्यात्मिक उन्नति के भौतिक उन्नति आतिशबाजी के अनार जैसी है। जैसे आतिशबाजी का अनार दूर से सुंदर-सुहावना दिखाई देता है पर निकट जाओ तो जला देता है, ऐसे ही भौतिक सुख-सुविधाओं पर अत्यधिक निर्भरता अशांति, उद्वेग का कारण बन जाती है। आध्यात्मिक विद्या में आगे बढ़ेंगे तो ऐहिक चीजें तो पाले हुए कुत्ते की तरह पीछे-पीछे आती हैं।"

विद्यार्थियों को ओजस्वी-तेजस्वी, मेधावी तथा महान बनाना हो तो पूज्य बापू जी जैसे ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के सत्संगों की वी.सी.डी., डी.वी.डी., एम.पी.श्री. व सत्साहित्य का लाभ दिलाना चाहिए, जिससे उनके द्वारा बतायी गयीं कुंजियों को अपने जीवन में अपनाकर विद्यार्थी

महान बन सकें। पूज्यश्री की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में चलाये जा रहे गुरुकुलों व बाल संस्कार केन्द्रों एवं विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविरो में उन्हें भेजना चाहिए। चारित्र्य, नैतिकता और आध्यात्मिकता बढ़ाने वाले आश्रम के मासिक प्रकाशन 'ऋषि प्रसाद', 'लोक कल्याण सेतु' एवं मासिक डी.वी.डी. मैगजीन 'ऋषि दर्शन' का लाभ भी लेना व औरों को दिलाना चाहिए।

अनुक्रमणिका

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की माँ ने माँगे तीन गहने

19वीं शताब्दी का यह प्रसंग है। बंगाल के मेदिनापुर जिले के वीरसिंह गाँव के एक बालक ने अपनी माँ से कहा: "माँ ! मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारे लिए कुछ गहने बनवाऊँ।"

माँ बोली: "हाँ बेटा ! बहुत दिनों से मुझे तीन गहनों की चाह है।"

उत्सुकतापूर्वक बालक ने पूछा: "माँ ! कौन से तीन गहने ?"

"बेटा ! इस गाँव में कोई विद्यालय नहीं है इसलिए मेरी पहली चाह यह है कि यहाँ एक अच्छा विद्यालय हो। दूसरा, गाँव वालों की चिकित्सा का कोई प्रबन्ध नहीं है, मैं चाहती हूँ कि यहाँ एक दवाखाना खुले। तीसरा, गरीब और अनाथ बच्चों में भोजन व खाद्य-सामग्री बाँटी जाय। बस, ये ही तीन गहने हैं जिनकी मुझे चाह है।"

माँ की बातें सुनकर बालक की आँखें प्रेमाश्रुओं से छलछला उठीं हृदय परोपकार की भावना से भर गया और सिर माँ के चरणों में झुक गया। उसने माँ के कहे अनुसार तीनों गहने बनवा दिये। वीरसिंह गाँव का भगवती विद्यालय आज भी इसका साक्षी है। वह माँ थी भगवती देवी और बालक था ईश्वरचन्द्र, जो आगे चलकर पं. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के नाम से विख्यात हुआ। माँ के बचपन के दिये उन संस्कारों ने बालक ईश्वरचन्द्र में मानवीय संवेदनाओं का विकास किया।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने अपने जीवन में शिक्षा (विशेषकर स्त्री-शिक्षा) के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये, साथ ही चिकित्सा-सेवा, अकाल पीड़ितों की सेवा एवं नशामुक्ति हेतु भी कार्य किये।

परोपकार की चाह ही जिस माँ के गहने थे और निराभिमानता से अलंकृत निःस्वार्थ सेवा ही जिस पुत्र के जीवन का उद्देश्य था, वे सत्संगी माँ भगवती देवी व विद्यासागर जी धन्य हैं ! 'सबमें एक, एक में सब' के सत्संग को पचाने वाली वह माता धन्य है !

अनुक्रमणिका

माँ की परवरिश शिशु को बुद्धिमान बनाती है

एक शिशु के लिए उसकी माँ से अच्छी परवरिश कोई भी नहीं कर सकता। माँ ही बच्चे की पहली शिक्षिका होती है। एक नवीनतम शोध से यह तथ्य सामने आया है कि जो बच्चे माँ की देखभाल से वंचित रहते हैं, वे कम बुद्धिमान होते हैं। इस शोध में 18 महीने की उम्र के शिशुओं की बुद्धिमानी की जाँच-परख की गयी। इन शिशुओं में से जिनकी देखभाल माँ द्वारा नहीं बल्कि रिश्तेदारों की गयी थी, उनमें भाषा-ज्ञान, गणित-ज्ञान आदि की कमी पायी गयी। शिशुओं की जिम्मेवारी आया, नौकरों या रिश्तेदारों पर छोड़ना उचित नहीं है। माँ की अपनत्व व प्रेम भरी देखभाल से ही शिशु चुस्त-दुरस्त एवं बुद्धिमान होगा। माँ के स्नेहभरे लालन-पालन से ही शिशुओं का समुचित विकास होता है।

कैसे थे शहीदों व देशप्रेमियों की माताओं के संस्कार ?

मेरी माता जी तथा गुरुदेव की कृपा - रामप्रसाद बिस्मिल

18 दिसम्बर 1927 ! गोरखपुर जेल की कालकोठरी एक माँ अपने बेटे से आखिरी मुलाकात करने आयी है। माँ जानती थी कि उसके बेटे ने निर्दय अंग्रेजों को नाकों चने चबवा दिये हैं। उसके बेटे के साथ अनेक देशप्रेमी युवक भी हैं जिनका आजादी ही एकमात्र उद्देश्य है। ऐसे स्वाभिमानी युवकों का नायक है उसका बेटा। दूसरे दिन भारत माता की आजादीकी बलिबेदी उसे चढ़ा दिया जायेगा।

आखिरी मुलाकात का ऐतिहासिक क्षण ! अपने साहस से अंग्रेज सरकार के सिंहासन को हिला देने वाले बेटे का फौलादी कलेजा माँ को देखते ही भाव से भर गया। आँखों से अश्रुधाराएँ बह चलीं। सामने वह ममतामयी माँ खड़ी थी जिसने जन्म दिया, अपने दूध के साथ देशभक्ति व भारतीय संस्कृति के दिव्य संस्कार दिये।

लेकिन यह क्या !.... माँ निश्चल खड़ी बेटे की ओर बड़ी चुभती नज़रों से एकटक देख रही है। मानो उसकी आँखों से आँसू नहीं, अंगारे निकल रहे हों। माँ ने तीखे स्वर में कहा: "तू रो रहा है ! तुमने आज मेरे बरसों के विश्वास को धोखा दिया है। मैं बरसों से यह समझती रही कि 'मेरा बेटा एक सच्चा देशभक्त है। वह तो अपनी मोह-ममता तथा तुच्छ इच्छाओं से ऊपर उठकर देशहित के लिए अपने जीवन का बलिदान करने जा रहा है।' मैं बरसों से यह भ्रम मन में पालती रही कि 'दुश्मनों को मेरे बेटे का नाम ही कँपा देने के लिए काफी है।' मैं नहीं जानती थी कि मेरा बेटा अपने देशहित व धर्म के पथ पर चलने में परिवार की मोह-ममता का सहारा लेकर आँसू बहायेगा। धिक्कार है मुझे !"

यह कहते हुए माँ वापस जाने को हुई तो बेटे ने गम्भीरता से कहा: "नहीं माँ ! हरगिज नहीं !! तुम्हारी कोख से जन्म लेकर ऐसी नीचता कैसे हो सकती है ! मैं तो आज तक समझता रहा कि 'माँ तो ममता की मूर्ति होती है। बेटे की इस स्थिति को देखकर पिघल जायेगी' परन्तु

आप तो.... आप जैसी माता को पा के मैं धन्य हो गया ! आपका बेटा मौत से नहीं डरता। ये आँसू तो अपनी सदगुणों की साक्षात मूर्ति माँ के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए थे।"

बेटे ने आँसू पोंछकर मुस्कराते हुए कहा: "माँ, अब तो खुश हो न ?" यह सुनकर माँ के होठों पर गर्वभरी मुसकराहट आ गयी।

वह जन्मदात्री थी रामप्रसाद बिस्मिल की माँ। बिस्मिल जी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं- "यदि मुझे ऐसी माता न मिलती तो मैं भी अति साधारण मनुष्यों की भाँति संसारचक्र में फँसकर जीवन निर्वाह करता। मुझमें जो कुछ जीवन तथा साहस आया, वह मेरी माता जी तथा गुरुदेव श्रीसोमदेव जी की कृपा का ही परिणाम है। वास्तव में मेरे गुरुदेव की शिक्षाओं ने ही मेरे जीवन में आत्मिक बल का संचार किया।"

अनुक्रमणिका

माँ प्रभावती की सुशिक्षा ने देश को दिये नेता जी सुभाषचन्द्र बोस

कटक नगर में एक बालक शिबू अकसर अपनी माँ प्रभावती के साथ मंदिरों में देव-दर्शन के लिए जाता था। एक दिन वे शिवरात्री को दर्शन करने गये। खूब सर्दी पड़ रही थी। मंदिर में भगवान आशुतोष की भव्य मूर्ति देखकर शिबू ने माँ से पूछा: "अम्मा ! क्या भगवान शंकर को सर्दी नहीं लगती, जो ऐसी ठंड में भी भी नंगे बदन बैठे हैं ?"

माँ बोली: "नहीं बेटा ! उन्हें सर्दी नहीं लगती। वे तो सदा कैलास पर्वत पर निवास करते हैं। वे तो भोलेनाथ हैं, भक्तों के दुःख दूर करते हैं।"

"अम्मा ! वहाँ तो इससे भी ज्यादा ठंड होती है, फिर ये इतनी ठंड कैसे सहन कर लेते हैं ?"

"हाँ बेटे ! ठंड तो वहाँ इससे बहुत अधिक होती है किंतु भगवान शंकर तपस्या करते हैं इसलिए उन्हें सर्दी नहीं लगती। तपस्या से उनका देवत्व जाग उठा है, अतः वे लोगों के कष्ट दूर करने में भी पूरी तरह समर्थ हैं।"

"तो अम्मा ! आपका प्यारा बेटा शिबू भी तपस्या करके अपना देवत्व जागृत करने की कोशिश में आज से ही लग जायेगा।"

"ठीक है, ऐसा ही करना लेकिन अभी तो भगवान के दर्शन करो और उनकी स्तुति करो।" माँ ने बात टाल दी।

एक दिन माँ उसे संतों-महापुरुषों के जीवन-चरित्र सुना रही थी कि कैसे हमारे महापुरुषों ने समाज-सेवा (निष्काम कर्मयोग) में ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया, जिससे आज वे संसार में श्रद्धा, प्रेम व सम्मान की दृष्टि से देखे जाते हैं।

उन प्रसंगों से उत्साहित होकर शिबू बोला: "तो अम्मा ! आपका प्यारा बेटा शिबू भी सेवा करने में किसी से पीछे नहीं रहेगा। मैं भी जरूरतमंद लोगों की सेवा करूँगा।"

देवीस्वरूपा उस माँ ने अपने लाड़ले को ओर भी प्रोत्साहित किया: "हाँ बेटे ! अच्छे बालक सदैव अपना कुछ समय बचाकर सेवाकार्यों में लगाते हैं।"

अब तो शिबू की दिनचर्या विलक्षण हो गयी। ठंड में भी कभी वह कम-से-कम कपड़े पहनकर पूजा-अर्चना करने का अभ्यास करता। कभी जेब-खर्च से दवाई, फल आदि खरीदकर अस्पताल के रोगियों में बाँटता। किसी मोहल्ले में गंदगी देखता तो अपने हम उम्र साथियों को बुलाकर सफाई करने में जुट जाता। यह बात उसके पिता जानकीनाथ तक पहुँची। वे चिंता में पड़ गये। एक दिन उन्होंने शिबू को प्यार से समझाया: "बेटा शिबू ! तुम्हारी उम्र अभी पढ़ने की है। तुम्हें सिर्फ पढ़ने और खेलने से ही सरोकार होना चाहिए। तुम अभी से सेवा की आड़ में आरामगर्दी करने लगे हो, यह बात ठीक नहीं है।"

शिबू ने साहस एवं विनम्रतापूर्वक जवाब दिया: "नहीं पिता जी ! मैं जरा भी आवारागर्दी नहीं कर रहा हूँ। हाँ, जहाँ तक पढ़ने का ताल्लुक है, मैं पढ़ने के समय पढ़ता हूँ, खेलने के समय खेलता हूँ और इनसे समय बचाकर कुछ समाज-सेवा भी कर लेता हूँ। जिस समाज से मैंने शिक्षा और आपने इज्जत पायी, उसकी सेवा करना हमारा फर्ज है न पिता जी !"

जानकीनाथ कुछ क्षण अपने लाल की ओर अपलक नेत्रों से निहारते रहे। फिर पूछा: "और कभी सर्दी में कपड़े उतारकर तुम कौन-सी साधना करते हो ?"

"पिता जी ! मैं हर परिस्थिति में सम रहने की आदत का विकास करना चाहता हूँ। जब हमारे महापुरुष, देवता कठोर जीवन अपनाकर सेवा करके अपने देवत्व की मनोवृत्ति को विकसित कर सकते हैं तो मैं क्यों पीछे रहूँ ! पिता जी ! मैं अपने भीतर देवत्व की गरिमा, देवत्व के आदर्शों को विकसित करने का प्रयत्न करूँगा। मैं अभी से उस अभ्यास में जुट गया हूँ।"

यही दृढ़निश्चयी बालक शिबू आगे चलकर नेता सुभाषचन्द्र बोस के नाम से सुप्रसिद्ध हुए, जिन्होंने युवकों को जागृत कर देश के लिए एक समर्पित पीढ़ी तैयार की। धन्य हैं ऐसे दृढ़निश्चयी बालक एवं धन्य हैं उनकी माता-पिता जिन्होंने अपने पुत्र को बचपन में ही निष्काम कर्मयोगी बना दिया।

अनुक्रमणिका

काश ! मेरी कोख ने एक और भगतसिंह को जन्म दिया होता

भगत सिंह जब फाँसी के फंदे पर झूले तो उनकी माँ विद्यावती की आँखों से आँसू बहे। लोगों ने कहा: "माँ ! तू शहीद की माँ होकर रोती है, यह शोभा नहीं देता।"

भगतसिंह की माता ने कहा: "मैं अपने पुत्र की शहादत (आत्मबलिदान) पर नहीं रो रही हूँ। यदि मेरी कोख ने एक और भगतसिंह को जन्म दिया होता तो मैं उसको भी देश के चरणों में समर्पित कर देती।"

माँ के अनुशासन ने गढ़ा लाला लाजपतराय का जीवन

स्वतंत्रता संग्राम की बलिवेदी पर अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले कर्मयोगियों में पंजाब केसरी लाला लाजपतराय का नाम आदरसहित लिया जाता है।

माँ गुलाबदेवी ने अनपढ़ होते हुए भी लाजपतराय को धर्म, सदाचार और संयम की बहुमूल्य शिक्षा दी, जिसने उनके जीवन को सही दिशा प्रदान की।

एक बार लाजपतराय जूआ खेलने वाले लड़कों की कुसंगति में पड़ गये। लड़को द्वारा बहुत उत्साहित करने पर उन्होंने एक पैसा दाँव पर लगाया और वे जीत गये। घर आकर उन्होंने वो पैसे माँ को दिये। माँ को जब पता चला कि 'ये पैसे जूआ खेलकर लाये गये हैं' तो उन्होंने लाजपतराय को कमरे में बंद कर दिया। दिनभर उन्होंने न तो बटे को कुछ खाने को दिया और न ही स्वयं कुछ खाया। जब लाजपतराय ने भविष्य में फिर कभी जूआ न खेलने का वचन दिया, तब उन्होंने उन्हें भोजन दिया एवं स्वयं किया।

वे अपने पुत्र को स्नेह तो करती थीं, साथ ही सदा सचेत भी रहती थीं कि 'कहीं मेरा बेटा गलत रास्ते पर तो नहीं जा रहा है।' प्यार और ममता के आँचल के साथ मिली अनुशासन की कड़ी शिक्षा ने लाजपतराय के जीवन को चमका दिया।

अनुक्रमणिका

ब्रह्मदत्त को माँ ने देश-द्रोही होने से बचाया

लाहौर षड्यंत्र केस के क्रांतिकारियों में से ब्रह्मदत्त मिश्रा इकबालिया गवाह बन गये थे। जेल में उनकी माँ उनसे मिलने आयीं परंतु उनकी पत्नी ने तो मिलने से भी मना कर दिया।

पत्नी ने माँ से कहा: "जो व्यक्ति अपने साथियों के प्रति ईमानदार नहीं, वह अपनी पत्नी के प्रति भी ईमानदार नहीं हो सकता।"

उनकी माँ ने आकर उनसे कहा: "मुझे पता होता कि तू बड़ा होकर मेरी कोख को कलंक लगायेगा तो मैं उसी समय तेरा गला घोट देती।"

ब्रह्मदत्त को भारी पश्चात्ताप हुआ। बाद में वे अपने बयान से मुकर गये। ऐसी थीं भारत की देवियाँ !

निवेदिता झुक पड़ीं चाफेकर बंधुओं की माँ के चरणों में !

सन् 1897 में जब पुणे शहर प्लेग जैसी खतरनाक बीमारी से जूझ रहा था तब लोगों की परेशानियाँ सुनने के लिए अंग्रेज शासन द्वारा वाल्टर चार्ल्स रैंड को अधिकारी के तौर पर नियुक्त किया गया। स्थिति ठीक करने के बजाय रैंड ने लोगों पर कष्ट ढाना शुरू कर दिया। सैनिक तलाशी के बहाने माताओं-बहनों को तंग करते, जूते पहन के ही हिन्दुओं के पूजाघरों में घुस जाते, जो चीजें अच्छी लगतीं उन्हें उठा के ले जाते, इतना ही नहीं कपड़े उतारकर तलाशी लेते। चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गयी। लोगों को इस अत्याचार से मुक्ति दिलाने हेतु चाफेकर बंधुओं ने अंग्रेज अधिकारी रैंड व आयर्स्ट को गोली मार दी।

अंग्रेज सरकार ने इस मामले में दामोदर, बालकृष्ण व वासुदेव - इन तीनों चाफेकर बंधुओं को फाँसी पर चढ़ा दिया। इस घटना से सबकी आँखें भर आयीं। भगिनी निवेदिता (स्वामी विवेकानंद जी की शिष्या) इन शहीदों की माँ द्वारिकाबाई को सांत्वना देने पहुँची। उनका अनुमान था कि तीनों पुत्र मारे जाने पर माँ आँसू बहाती होंगी। पर यह क्या ? एक माँ का ऐसा जवाब !

माँ ने कहा: "बहन ! मैं क्यों दुःख करूँ ? मेरे तो तीनों राजहंस मातृभूमि की गोद में चिरनिद्रा में सो रहे हैं। ऐसे देशभक्तों की माँ बनने का सौभाग्य भगवान ने मुझे दिया। आपकी आँखों में ये मोह के आँसू क्यों ? काश ! मेरी कोई और भी संतान होती जिसे मैं देश को दे सकती !"

निवेदिता झुक पड़ीं उन माँ के चरणों में व बोलीं- "धन्य हो माँ ! तुम्हें शत्-शत् प्रणाम !"

अनुक्रमणिका

देशसेवा हेतु माँ ने सरदार पटेल को दी सहर्ष स्वीकृति

सरदार वल्लभभाई पटेल ने जब अपनी माँ से देशसेवा की आज्ञा माँगी तो उनकी माँ ने कहा: "बहुत कठिन काम है बेटा ! देशसेवा का अर्थ गद्दी पर बैठना और हुक्मत चलाना नहीं है, उसमें झाड़ू-बुहारी से लेकर दुष्टों के संहार तक के कठिन काम करने पड़ते हैं। जिस दिन मुझे यह विश्वास हो जायेगा कि तू कठिन-से-कठिन कार्य भी कर सकता है, उसी दिन मैं तुझे आज्ञा दूँगी।"

सामने जल रहे दीपक पर सरदार पटेल ने उँगली रख दी। वह जल गयी, उसमें घाव पड़ गया पर पटेल ने उफ तक न की। पटेल जी की माँ ने उनका हाथ खींचा और उन्हें छाती से लगाते हुए कहा: "बेटा ! तू देशसेवा के लिए सहर्ष जा सकता है।"

जब देश की आजादी पर आँच आयी तो भारत की माताओं ने अपनी संतानों को निर्भीकता से स्वतंत्रता हेतु देश को अर्पित कर दिया और देश स्वतंत्र हुआ। पर आज के समय

में सनातन संस्कृति, सनातन धर्म की रक्षा और आत्मिक स्वतंत्रता की अति आवश्यकता है। अतः हे भारत की देवियो ! अपने बच्चों में ऐसे दिव्य सुसंस्कार भरों कि वे अंतर्धामी प्रभु को पाने वाले और लोगों को जगाने वाले बनें।

अनुक्रमणिका

मालवीयजी की मातृनिष्ठा

महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी की माता मूना देवी अत्यंत धर्मपरायण, सादगीसम्पन्न व दृढ़प्रतिज्ञ महिला थीं। माँ से प्राप्त सादगी, सरलता, धर्माचरण के संस्कार ही मालवीय जी की महानता का आधार बने। सत्य बोलना उन्होंने अपना नियम बना लिया था। किसी भी तरह की बात हो, अपनी माता को अवश्य बता देते थे। मालवीय जी का कहना था: "इसी नियम के कारण मैं कितनी ही पापों से बचा, मुझे शक्ति मिली और मेरा जीवन उत्साह और दिव्य ज्योति से उज्ज्वल हुआ।"

बालक चरित्रवान कैसे बनें ? - पूज्यपाद भगवत्पाद साँईं श्री लीलाशाह जी महाराज

प्राचीनकाल में बचपन से ही धार्मिक शिक्षाएँ दी जाती थीं। धार्मिक शिक्षा देने से चरित्र का निर्माण होता है। ऐसे भी शूरवीर थे जो शेरों से लड़ाइयाँ करते थे। रानी मदालसा जैसी माताएँ बालकों को 'तुम शुद्ध-बुद्ध, शाश्वत, अमर आत्मा हो' - ऐसी आत्मज्ञान की लोरियाँ सुनाती थीं और आज बच्चों को डराने वाली बातें बताते हैं, अफसोस !

माता-पिता ही हैं जो बालकों का सुधार करते हैं। वे मानो एक प्रकार के माली हैं। इन दोनों में से माता का प्रभाव अधिक होता है क्योंकि गर्भ के भीतर ही बालक पर माता के खाने-पीने तथा विचारों का प्रभाव पड़ता है। बचपन से ही उन्हें सत्य और संयम के मार्ग पर चलने की शिक्षा देनी चाहिए तथा अच्छी-अच्छी, स्वास्थ्य और ब्रह्मचर्य के विषय पर आधारित ('दिव्य प्रेरणा प्रकाश' जैसी) पुस्तकें पढ़ायी जा चाहिए। उन्हें कुश्ती सिखानी चाहिए। उनके खानपान पर ध्यान देना चाहिए, जिससे वे स्वस्थ रहें।

उन्हें व्यर्थ जेबखर्च देकर चटोरा नहीं बनाना चाहिए। चॉकलेट, बिस्कुट, डबलरोटी, फास्टफूड जैसी खुराक नहीं देनी चाहिए। बिस्कुट, डबलरोटी जैसी खुराक आँतें खराब करती हैं, बुद्धि भी खराब करती हैं। (नाश्ते में रोटी पर मक्खन-मिश्री लगाकर खिलाओ तो बच्चों की बुद्धि बढ़ेगी। पलाश, बेलपत्र आदि जड़ी-बूटियों से निर्मित आश्रम के सेवाकेन्द्रों पर उपलब्ध 'गो-चन्दन धूपबत्ती' जलाकर बंद कमरे में प्राणायाम भी बच्चों की बुद्धि बढ़ाने में चमत्कारपूर्ण सहयोग देंगे।)

बालकों में दैवी सम्पदा के गुण डालें

उनके चरित्र पर अत्यधिक ध्यान देना चाहिए। देखना चाहिए कि वे समय व्यर्थ तो नहीं गँवाते, कोई बुरी आदत तो नहीं अपनाते, व्यर्थ चेष्टा, हलके संग में नहीं पड़ रहे, विलासी, आरामप्रिय तो नहीं हो रहे ! उनके वातावरण पर भी ध्यान देना चाहिए। देखना चाहिए कि वो कोई भी गंदा शब्द मुख से न निकालें तथा सबसे मधुर बोलना, बड़ों का आदर करना, आज्ञाकारी बनना, किसी को भी न सताना, झूठ न बोलना, चुगली न करना, वैर-ईर्ष्या न रखना, सदाचारी बनना सीखें। बालक सत्यनिष्ठ, स्नेही, साहसी व निर्मल स्वभाव वाले तो सहज में हो सकते हैं लेकिन कुसंग के कारण अपना सर्वनाश कर लेते हैं। एकाग्रता, तत्परता, सच्चरित्रता, उच्च उद्देश्य से ये ही बालक सफलता कदमों में लाकर रख सकते हैं, सारे विश्व-ब्रह्मांडों में व्याप्त भगवान को भी पा सकते हैं। ऐसे पुण्य-पुरुषार्थी के लिए फिर दुर्लभ क्या रहा ? इसलिए दैवी सम्पदा के गुण बालकों में डालने चाहिए, स्मरण रखिये कि बालक सुधरे तो भारत सुधरा।

.....तो रामराज्य हो जाय

गंदी, चरित्रभ्रष्ट करने वाली फिल्मों के द्वारा चरित्र बिगड़ता है। ये गंदे विज्ञापन, उपन्यास, चरित्र भ्रष्ट करने वाला साहित्य और संग बंद हो जाय तो रामराज्य ही आ जाय। आजकल के अश्लील चलचित्रों ने तो युवक-युवतियों का ब्रह्मचर्य ही नष्ट कर दिया है ! यदि ब्रह्मचर्य और संयम हो तो बीमारीयाँ नहींवत् हो जाती हैं, डॉक्टरों के अधीन नहीं बनते। विद्यार्थी लगातार कई वर्ष अनुत्तीर्ण ही नहीं होते। ब्रह्मचर्य और संयम के अभाव में उनका बल, बुद्धि, तेज हीन होने के कारण मस्तिष्क काम करने से थक जाता है, परिणाम यह होता है कि वे कई वर्ष लगातार परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते रहते हैं और बार-बार उन्हीं कक्षाओं में उत्तीर्ण होने की कोशिश करते रहते हैं।

गंदे सिनेमा ने तो सत्यानाश कर दिया है। देखो कि इस सिनेमा से कितने घर बरबाद हो गये हैं ! कैसे बुरे चित्र एवं वासनाओं से भरे गाने चित्त को खराब करते हैं ! मन खराब तो शरीर खराब । शरीर को बीमारीयाँ आकर घेर लेती हैं। पैसे भी दो और बीमारियाँ भी लो, ऐसे सिनेमा से क्या लाभ ! आजकल केवल पैसे कमाने के लिए बुरी से बुरी फिल्म का निर्माण करके लोगों का खाना खराब किया जा रहा है।

एक बार विनोबा भावे को सिनेमा में ले गये। वहाँ बुरे चित्र दिखाने लगे तो विनोबा दरी बिछाकर सो गये। तुम भी ऐसी फिल्में न देखो। सिनेमा देखने से विचार, संकल्प खराब होते हैं। विद्यार्थियों को चाहिए कि वे अपने चरित्र पर ध्यान दें। धन गया तो कुछ नहीं गया, स्वास्थ्य

गया तो कुछ-कुछ गया किंतु चरित्र गया तो सब कुछ गया। अतः चरित्र ही है जो मनुष्य को महान बनाता है।

अनुक्रमणिका

माँ के ऋण से मुक्त होना सम्भव नहीं ! - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

एक बार बीरबल ने अपनी माँ से कहा: "माँ मैं तेरी सेवा करके ऋण चुकाना चाहता हूँ। बता, मैं तेरी क्या सेवा करूँ ?"

माँ- "बेटा ! मेरी सेवा का बदला क्या चुकायेगा ?"

"माँ ! तू जो कहेगी, वह करूँगा।"

"बेटा ! मैंने प्रेम से तुम्हारा पालन-पोषण किया, जो मेरा कर्तव्य था। तूने कृतज्ञता का भाव व्यक्त कर दिया.... बस, ठीक है। उसी से मुझे आनन्द है।"

"बेटा ! प्रेम से जो सेवा होती है वह अलग बात है और मंत्री बनकर जो सेवा की जाती है वह अलग बात है।"

बीरबल ने हठ पकड़ा। तब माँ ने कहा: "अच्छा ! वैसे भी मैं बीमार हूँ। बेटा ! आज रात को तू जागना। यदि मुझे पानी की जरूरत पड़े तो तू ही देना।"

बीरबल: "ठीक है माँ।"

रात में बीरबल ने माँ के बिस्तर के पास ही अपना बिस्तर लगाया। थोड़ी रात बीती, माँ को खाँसी आयी। बीरबल ने पूछा: "माँ ! क्या है ?"

माँ- "बेटा ! एक घूँट पानी पिला दे।"

बीरबल पानी ले आया। माँ ने कहा: "बेटा ! अभी नहीं चाहिए, रख दे।"

बीरबल ने गिलास रख दिया। थोड़ी देर बीती। माँ ने जरा-सी कुहनी मार दी।

बीरबल: "क्या बात है ?"

माँ- "जरा प्यास लगी है।"

"मैंने पानी तेरे पास ही तो रखा है !"

"जरा उठाकर दे दे।"

बीरबल ने पानी दे दिया। फिर उनकी आँख लग गयी। थोड़ी देर बाद माँ ने फिर हिलाया: "बीरबल !"

माँ ! क्या है ?"

"बेटा ! नींद नहीं आती है। जरा पानी तो देना !"

"पानी दिया तो सही ! यह गिलास मैं पड़ा है।"

"अच्छा... अच्छा..."

थोड़ी देर और बीती। माँ ने बीरबल को फिर उठाया और कहा: "बेटा ! पानी....।"

बीरबल: "क्या रात भर 'पानी-पानी' करती है ?"

माँ- "अरे ! तूने ही तो कहा था कि सेवा करनी है और तू एक ही रात में थक गया ! तूने तो कई रात्रियों में मुझे जगाया था। मैं तो केवल पानी माँगती हूँ तूने तो बिस्तर पर कई बार टट्टी-पेशाब भी की थी। फिर भी मैंने फरियाद नहीं की थी। मैं तेरे गीले वस्त्रों पर सोयी और तुझे सूखे में सुलाया तब भी मैंने फरियाद नहीं की और तू एक रात न जाग सका ? बेटा ! माँ के हृदय में पुत्र के लिए जो वात्सल्य होता है ऐसा प्रेम अगर पुत्र के हृदय में माँ और भगवान के लिए हो जाय तो सारा संसार स्वर्ग बन जाय।"

पाश्चात्य देशों में कई लोग माँ-बाप के वृद्ध होने पर उन्हें 'नर्सिंग होम' (वृद्धाश्रम) में छोड़ आते हैं। लेकिन भारतीय संस्कृति यह नहीं कहती है कि 'वृद्ध पशु की तरह माता-पिता को भी 'नर्सिंग होम' में छोड़ आओ।' नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति का तो कहना है कि 'जब तुम छोटे थे, हर चीज के मोहताज थे, तब माँ-बाप ने तुम्हारी सेवा की थी। अब माँ-बाप वृद्ध हुए हैं, बीमार हो गये हैं तो तुम्हारा कर्तव्य है कि प्रेम से उनकी सेवा करके अपने हृदय का विकास करो। माता-पिता में परमेश्वर की भावना करके हृदयेश्वर के आनंद को उभारो, जीवन को सफल करो। तुम्हें सेवा का सुंदर अवसर मिल रहा है।'

[अनुक्रमणिका](#)

बच्चों को संस्कारित करने के सरल तरीके - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

कुछ बच्चे घर से भाग जाते हैं। क्यों ? क्योंकि या तो बचपन में उन्हें खूब लाड़ लड़ाया गया है अथवा खूब रोका-टोका गया है।

कुछ माता-पिता अपने बच्चे को खूब लाड़-लड़ाते हैं। वे सोचते हैं कि 'बेटे को बढ़िया स्कूल में पढ़ायेंगे, पायलट, इंजीनियर आदि बनायेंगे।' इसके लिए बच्चे को छात्रावास में भी रखते हैं किंतु बच्चा ऐसा हो जाता है कि न घर में रहता है न छात्रावास में रहता है, न पायलट आदि बनता है वरन् फुटपाथी हो जाता है। ऐसे बच्चों को मैं जानता हूँ।

बच्चों को विश्वास में लें

कुछ माँ-बाप बच्चों को खूब डाँटते हैं क्योंकि वे जैसा चाहते हैं बच्चे वैसा नहीं कर पाते। बच्चों की अपनी उमंगें हैं, अपनी ख्वाहिशें हैं, अपने-अपने ढंग की योग्यता है, ज्यादा टोका-टाकी से बच्चा बेचारा भीतर-ही-भीतर सिकुड़ता रहता है। फिर वह छुपकर गलती करता है और उसमें बेईमानी की आदत पनपती है।

कभी माता-पिता की टोका-टाकी हितकारक होती है तो कभी गड़बड़ी कर देती है। माता-पिता या कुटुम्बी के लिए उचित है कि वे बच्चे को इतना विश्वास में लें कि बच्चा कोई गलती करे तो वह उन्हें बता दे। गलती जानकर उसको ज्यादा टोके नहीं, गलती का मूल खोजें तथा उस मूल को हटा दें, बच्चा फिर गलती नहीं करेगा।

खान-पान में ज्यादा लाड़ न लड़ाएँ, स्वास्थ्य का ध्यान रखें

बालक पैदा होता है तब से लेकर 7 साल तक उसका मूलाधार केन्द्र विकसित होता है। इन 7 सालों में वह बीमार न हो इसकी सावधानी बरतें। 2-3 साल का होने पर साल में एक बार 3-4 दिन पपीता और उसके बीज खिलायें ताकि उसका पेट ठीक रहे।

बालक यदि इधर-उधर की चीजें खाता है, भोजन के समय ठीक ढंग से नहीं खाता तो आगे चलकर उसका पाचन-तंत्र खराब हो जायेगा। माता-पिता को चाहिए कि बच्चों को खान-पान में ज्यादा लाड़ न लड़ाएँ व खान-पान की सलाह किसी वैद्य या जानकार से ले।

अच्छी भावनाओं का पोषण करें

7 से 14 वर्ष की उम्र में स्वाधिष्ठान केन्द्र विकसित होता है। अगर इस उम्र में ध्यान न दिया गया तो बच्चे में गंदी भावनाएँ और गंदी आदतों वाले बच्चों के संस्कार पड़ेंगे। इस समय वह जैसा देखेगा और जैसी भावनाएँ उसके चित्त में आ गयीं वे सब उसे जीवनभर नचाती रहेंगी। माता-पिता के लिए उचित है कि उसकी अच्छी भावनाओं का पोषण करें तथा बुरी भावनाओं को निकालने के लिए प्रोत्साहित करें लेकिन दबाव न डालें।

अनुक्रमणिका

स्वयं पर नियंत्रण पाने की ये युक्तियाँ सिखायें

14 से 21 साल तक मणिपुर केन्द्र विकसित होता है। उन दिनों में संयम-पालन, सूर्य नमस्कार आदि करने से वासनाओं, भावनाओं के आवेग में या भय-चिंता में बच्चों से जो गलतियाँ होती हैं उन पर वे स्वयं नियंत्रण पा सकते हैं और बुद्धिपूर्वक अच्छे इरादे से कर्म करके ऊँचे उठ सकते हैं।

भूमध्य को अनामिका से हल्का सा रगड़ते हुए 'ॐ गं गणपतये नमः', 'ॐ श्री गुरुभ्यो नमः', मंत्र जपते हुए तिलक करें। फिर 2-3 मिनट प्रणाम की मुद्रा में सिर जमीन पर लगाकर रखें। इससे निर्णयशक्ति, बौद्धिक शक्ति में जादुई लाभ होता है। क्रोध, आवेश, वैर-ईर्ष्या पर नियंत्रण पाने वाले रसों का भीतर विकास होता है।

शवासन में आत्मिक शक्तियाँ खींचकर पाँचों शरीरों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय शरीर) में लाने की व्यवस्था है। बाह्य शरीर का मोटा हो जाना वांछनीय नहीं है, मजबूत हो जाना वांछनीय है। बाह्य शरीर के साथ प्राणमय शरीर भी विकसित होना चाहिए। प्राणबल, मनोबल कमजोर हैं तो दूसरे के प्राणबल व मनोबल के आगे आपका मन

सिकुड़ जायेगा। आपकी विचारशक्ति कमजोर है तो दूसरा आपको पटा लेगा। अतः बालक के पाँचों शरीर विकसित हों इस पर ध्यान दें।

बच्चे बहुत परेशान करते हों तो क्या करें ?

कई माता-पिता कहते हैं कि "बापू जी ! बच्चे बहुत परेशान करते हैं, क्या करें ?"

उन्हें ज्यादा टोकें नहीं बल्कि उनकी उस उछलकूद को वे सुव्यवस्थित कर सकें - ऐसा उपाय करें। ज्यादा टोकेंगे तो वे छुपकर करेंगे अथवा उनका मन दब जायेगा या विरोधी हो जायेगा। इस तरह उनका हित चाहते हुए भी आप अनजाने में अहित कर बैठते हैं।

बच्चे चंचल हैं तो उन्हें ज्यादा न रोकें-टोकें। उनकी यह अवस्था ही है उछलकूद करने की। माता-पिता ज्यादा टोका-टाकी करेंगे तो उनके मन में माता-पिता के लिए जो आदर, मान और स्नेह होना चाहिए, वह नहीं होगा। 12 साल के दिमाग वाले क बलात् 60 सालवाले जैसा करने के लिए कहें तो उसके लिए वैसा कर पाना सम्भव नहीं है।

अब पूछोगे कि "क्या बच्चा जैसा करना चाहे उसे करने दिया जाये ?" हाँ, कुछ तो करने दिया जाय और कुछ मोड़ दिया जाय। अगर अत्यंत अनुचित करता है तो दबाव से अनुचित छोड़े इसकी अपेक्षा सुझाव से छोड़े - ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

बच्चों की गंदी आदतें कैसे दूर करें ?

'चाय न पियो... कॉफी न पियो....' - ऐसा कहने की जगह उससे कहो: 'केवल दूध पियो।' इनकार की अपेक्षा बच्चे को मोड़ने की कला माता-पिता को सीखनी चाहिए।

'तेरे में यह कमी है, यह कमी है....' ऐसा कह के आप अनजाने में बच्चे के साथ जो जुल्म करते हैं, वह न करें। बच्चे में आपको 100 अवगुण दिखते हैं, ऐसे ही उसमें कोई-न-कोई सदगुण भी तो होगा। जो गुण है उसकी प्रशंसा करे, बच्चे का उत्साह बढ़ाये। फिर उसमें जो कमी है उसके प्रति थोड़ी सी ग्लानि पैदा करा दें- 'बेटा ! ऐसा तुझे शोभा नहीं देता। तू चाहे तो इस कमी को निकाल सकता है।' इस तरह अपनी कमी के प्रति मन में ग्लानि आने से वह स्वयं ही उसे निकाल देगा।

इस पद्धति से संतान अवश्य बनेगी ओजस्वी-तेजस्वी

लोग बोलते हैं- 'यह उन्नति का युग है।' मैं बोलता हूँ कि युवक-युवतियों के लिए ऐसा पतन का युग जो अभी चल रहा है वैसा कभी नहीं आया। बच्चों पर बड़ा जुल्म हो रहा है। उनका शरीर मजबूत नहीं हो रहा है, मनोबल विकसित नहीं हो रहा है एवं बुद्धिबल सूक्ष्मता की यात्रा नहीं कर रहा है।

अतः बच्चे को 10-10 प्राणायाम (कानों में उँगलियाँ डाल के कंठ से अंकार के जप का प्रयोग, (पढ़े पृष्ठ 77) सुबह-शाम करवाने चाहिए, सूर्य नमस्कार करवाने चाहिए। जग में शांति लानी है, खुशियाँ लानी हैं तो ऋषि पद्धति से शिक्षण की आवश्यकता है। इस पद्धति (जो की

ऊपर बतायी गयी हैं) का उपयोग करके आप अपनी संतान को ओजस्वी-तेजस्वी अवश्य बना सकते हैं।

अनुक्रमणिका

प्यार से पोषण करें सद्गुणों का

महात्मा हरिद्रुमत गांधार (वर्तमान नाम - कांधार या कंदहार) देश की ओर जा रहे थे। मार्ग में एक ऐसा गाँव पड़ा जहाँ के सभी लोग - बूढ़े, जवा, स्त्रियाँ और बच्चे भी भगवद् प्रेम व भक्ति करने वाले थे। चलते-चलते अचानक महाराज को एक बालक के रुदन की आवाज सुनाई दी। जरा रुककर सुना तो पता चला कि कोई माँ अपने बच्चे को डाँट-फटकार रही है। महाराज ने दरवाजे पर जाकर उस महिला से पूछा: "माता जी ! क्यों पीट रही हो इस मासूम बच्चे को ?"

महिला बोली: "महाराज ! क्या कहूँ, पूरे गाँव में केवल एक मेरा ही यह बालक ऐसा है जो तो भगवान की पूजा करता है न प्रार्थना, न कीर्तन, न सत्संग में जाता है न भगवान को मानता ही है, एकदम घोर नास्तिक जैसा है। इसके कारण हमें अपमानित होना पड़ता है, लोगो की बातें सुननी पड़ती है, इसी के कारण अपयश होता है। अब आप ही बताइये, क्रोध न करूँ तो क्या करूँ ?"

संतों का तो सहज स्वभाव होता है लोगों का भला करना। संत चलते-फिरते भी लोगों को सही मार्ग बताते रहते हैं, उन्हें भगवान के रास्ते लगाते रहते हैं। हरिद्रुमत बोले: "माता जी ! प्यार से ही बच्चों की कमियों, गलतियों को दूर किया जा सकता है, क्रोध से नहीं। ज्यादा रोकटोक करने से तो बच्चे विरोधी हो जाते हैं। जब तक बालक छोटा है तब तक उसे प्यार से समझाओ। बड़ा हो जाय, 10-12, 15 वर्ष का तो उसे सीख दो, स्नेह दो और अनुशासन में रखो। जब 16 वर्ष का हो तब उससे मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए, फिर डंडे से काम नहीं लेना चाहिए। आप इस बालक को प्रगाढ़ प्रेम, आत्मीयतायुक्त व्यवहार तथा अपनी स्नेहिल निष्ठा से ही सीख दीजिये।

दूसरा, आप जब जप-ध्यान, पूजा-पाठ करने बैठें तो इसे भी अपने पास बिठा लें। भगवान से प्रार्थना करें कि 'हे प्रभु ! इसे भी सद्बुद्धि दो कि यह आपकी भक्ति करे, आपको पाने के रास्ते चले।' बच्चे कहने की अपेक्षा देखकर जल्दी सीखते हैं, उनमें अनुसरण करने का गुण होता है। जैसा देखते हैं वैसा करने लग जाते हैं, फिर चाहे वह अच्छा हो या बुरा। आपको जप ध्यान करते देखकर यह भी करने लगेगा। बालक को ईश्वर की ओर ले जाने का यह एक सरल मार्ग है।"

यह कहकर महाराज आगे बढ़ गये। उस माता ने महात्मा जी की आज्ञा का पालन किया और बालक को प्रगाढ़ प्रेम दिया। प्रेममूर्ति महात्मा का आशीर्वाद, शुभ संकल्प और माँ के प्रेम का परिणाम ऐसा हुआ कि वह बालक आगे चलकर महान आत्मज्ञानी ऋषि हुआ।

आप भी अपने बच्चों को किन्हीं ब्रह्मज्ञानी महापुरुष के सत्संग का लाभ दिलाने ले जायें और उन्हें प्रेम से समझायें। भगवन्नाम की दीक्षा दिला दें। आप भी मंत्रजप करें, उन्हें भी अपने पास बिठाकर जप करायें तो उनमें से कोई कैसा भी उद्दंड क्यों न हो, आपके कुल को जगमगाने वाला कुलदीप बन सकता है।

अनुक्रमणिका

बच्चों के जीवन में लगाओ चार चाँद - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

डॉ. जे. मार्गन और दूसरे डॉक्टर लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान का ॐकार मंत्र बड़ा सफल है - पेट की तकलीफें छू (गायब), यकृत (Liver) की तकलीफें छू, दिमाग की कमजोरी छू। वे तो केवल तीन के छू होने की बात बोलते हैं, मैं तो बोलता हूँ कि कोई ॐकार का 50 दिन का अनुष्ठान विधिवत् और श्रद्धा-भक्ति से करे तो 7 जन्म की दरिद्रता छू और 1 साल का अनुष्ठान विधिवत् और श्रद्धा-भक्ति से करे तो परमात्मा का साक्षात्कार हो जाय। 'प्रणववाद' ग्रंथ में ॐकार मंत्र से संबंधित 22 हजार श्लोकों का समावेश है। तो आपको मैं ॐकार का जप करने की रीति बताता हूँ। आपको पापनाशिनी ऊर्जा मिलेगी, आपके हृदय में भगवान का रस आयेगा। आप भी करो और अपने बच्चे-बच्चियों को भी सिखाओ, उन्हें इकट्ठा करके बोलो कि 'ॐ' के जप से परीक्षा में अच्छे अंक आयेंगे, यादशक्ति बढ़ेगी तथा तुमको भगवान भी प्रेम करेंगे और लोग भी प्रेम करेंगे।'

क्या करना है पता ? लम्बा श्वास लेना है और दोनों कानों में अँगूठे के पास वाली उँगली डालकर कंठ से भगवान के पवित्र सर्वकल्याणकारी 'ॐ' का जप करना है। समझते हो मोहन ?... ॐकार मंत्र जपते समय पहले प्रतिज्ञा करनी होती है: 'ॐकार मंत्रः, गायत्री छंदः, भगवान नारायण ऋषिः, अंतर्धामी परमात्मा देवता, अंतर्धामी प्रीत्यर्थ, परमात्मप्राप्ति अर्थ जपे विनियोगः ।'

लम्बा श्वास रोको। जितना ज्यादा श्वास लगे उतने ज्यादा फेफड़ों के बंद छिद्र खुलेंगे, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ेगी व हिन्दू धर्म की महानता तुम्हारे जीवन में चमकेगी तथा दूसरों को भी बलात् खींच के लायेगी। जैसे बापू के पास सभी धर्मवाले आकर ॐकार के भक्त बन जाते हैं। यह है क्रांति ! श्वास रोककर कंठ में भगवान के पवित्र सर्वकल्याणकारी 'ॐ' का जप करो। मन में 'प्रभु मेरे, मैं प्रभु का बोलो। फिर कानों में उँगली डालकर मुँह बंद रख के कंठ से 'ॐ....

ॐ... ॐ.... ॐ... ॐ.... ॐ... ॐ.... ॐ.... ओsss म्.....' का उच्चारण (भ्रामरी प्राणायाम) करते हुए श्वास छोड़ो । फिर कानों में से उँगलियाँ निकाल दो। जप से बहुत फायदा होता है। और 'ॐ' भगवान का नाम है। अंतर्धामी भी खुश होंगे। दुबारा करोगे बटे ? करोगे लाला ? अच्छा, लम्बा श्वास लो। लो.... लो.... रोको । 'मैं प्रभु का, प्रभु मेरे । प्रभु आनन्दस्वरूप हैं । ॐ... ॐ... ॐ... ॐ... ॐ.... ॐ.... ओsss म्.... ।'

12 साल के गुरु अष्टावक्र जी और उनके आगे ब्रह्मज्ञान पाने हेतु बालक बने 80 साल का राजा जनक । 12 साल के ब्रह्मज्ञानी सबके बाप ! यह ऐसी विद्या है । करोगे फिर से ?... इस प्रकार 10 बार करवाओ ।

इतना करने के बाद शांत बैठ गये। होठों से जपो - 'ॐ ॐ प्रभु जी ॐ, आनन्द देवा ॐ, अंतर्धामी ॐ... तुम दूर भी नहीं हो, दुर्लभ नहीं हो, परे नहीं हो, पराये नहीं हो ।' दो मिनट करना है । फिर हृदय से जपो, ॐ शांति.... ॐ आनंद.... ॐ... ॐ... ॐ...

सुमिरन ऐसा कीजिये, खरे निशाने चोट ।

मन ईश्वर में लीन हो, हले न जिहवा होठ ॥

जीभ मत हिलाओ, होंठ मत हिलाओ, हृदय से ॐ आनंद.... ॐ शांति.... ॐ... ॐ... ॐ... जप करो । अब कंठ से जप करना है । श्री कृष्ण ने यह चस्का यशोदा जी को लगाया था । दो मिनट करो - ॐ.... ॐ... ॐ... मैं प्रभु का, प्रभु मेरे.... आनंद आयेगा, रस आयेगा । यह एक चमत्कारिक प्रयोग है । इसके नियमित अभ्यास से बुद्धिशक्ति का अदभुत विकास होगा । विद्यार्थियों के लिए तो यह वरदानस्वरूप है । शुरु में भले आपको आनंद न आये लेकिन कुछ समय में इसका चस्का जरूर लगेगा । और इसका चस्का जिनको भी लगेगा उनके सम्पर्क में आने वाले स्वाभाविक ही भारतीय संस्कृति के भक्त बन जायेंगे । इसको केवल व्यापक करना है , और क्या है ! हम भी करेंगे और आप भी करो तथा अपने पड़ोस में कराओ । जब ॐकार मंत्र के जप का प्रयोग कराये तो गौ-चंदन धूपबत्ती जलायें या गूगल धूप (दोनों संत श्री आशाराम जी आश्रम व समिति के सेवा केन्द्रों पर उपलब्ध - संकलक) कर सको तो ठीक है नहीं तो ऐसे ही करायें । विद्युत का कुचालक कम्बर, कारपेट आदि का आसन होना चाहिए ।

तुम लोग बच्चों से ये प्रयोग करवाओ, फिर बच्चों के जीवन में चार चाँद न लगे तो मेरी जिम्मेदारी ! दक्षिणा देना तुम्हारा कर्तव्य है और दक्षिणा लेना मेरा अधिकार है । तो मैं तुमसे यही दक्षिणा लेना चाहता हूँ । रुपये पैसे, चीज-वस्तु नहीं चाहिए । जो तुमने मेरे से पाया है, वही तुम तुम्हारे और पड़ोस के बच्चों के को सिखाकर उनको महानता के रास्ते लगा दो बस । मिल गयी दक्षिणा ! तुमको भी यह विद्या फलेगी और मेरे को भी दक्षिणा मिल गयी ।

[अनुक्रमणिका](#)

बाबा आमटे की माँ ने खिलौने के माध्यम से दिये दिव्य संस्कार

बालक मुरलीधर की माँ ज्यादा पढ़ी-लिखी नहीं थी किंतु थीं बहुत बुद्धिमान । उन्होंने अपने बेटे को एक गुड़िया दी। उसकी खासियत थी कि वह जब भी गिरती थी, हर बार उठ खड़ी होती थी । वे खिलौना देते हुए माँ ने समझाया: "बेटा ! इस गुड़िया को गिराते-गिराते तुम थक जाओगे लेकिन यह हर बार उठ खड़ी होगी । इसी तरह जीवन में तुम्हें बार-बार गिरने पर भी हिम्मत न हारनी चाहिए व फिर से उठ खड़े होना चाहिए । हार नहीं मानना ही जिंदगी का दूसरा नाम है ।"

धन्य हैं भारत की नारियाँ, जो एक छोटे खिलौने के माध्यम से भी ऐसे-ऐसे दिव्य संस्कार अपने सपूतों में डालती हैं ! बचपन में मिले ये दिव्य संस्कार व्यक्ति को महान बना देते हैं । यही बालक मुरलीधर आगे चलकर प्रसिद्ध समाजसेवक बाबा आमटे के नाम से विख्यात हुए ।

अनुक्रमणिका

संस्कारों के लिए सरकारी कोष का सदुपयोग

रघु राजा का दरबार लगा हुआ था । एक प्रश्न पर चर्चा हो रही थी कि 'राजकोष का उपयोग किन उद्देश्यों के लिए किया जाय ?'

एक पक्ष ने कहा: "सैन्यशक्ति ही समृद्ध राष्ट्र का आधार है, अतः सैन्यशक्ति बढ़ायी जाय । इससे देश की सुरक्षा भी होगी और हम अपने देश की सीमाओं का विस्तार करने में भी समर्थ होंगे । युद्ध होने पर पराजित देशों का धन भी अपने कोष में जमा होगा, इससे देश की आर्थिक स्थिति भी मजबूत होगी ।"

दूसरे पक्ष ने कहा: "धन का व्यय प्रजा को सुसंस्कार प्रदान करने में होना चाहिए । संयमी, विवेकी, साहसी, बुद्धिमान, धर्मनिष्ठ तथा आत्मप्रकाश की भावनाओं से भरा प्रत्येक नागरिक एक दुर्ग होगा, जिसे कोई भी जीत नहीं सकेगा । किसी भी देश की शक्ति धन में नहीं वरन् सदाचारी व्यक्तियों में निहित है । शील की शक्ति के आधार पर कोई भी छोटा देश चक्रवर्ती बन जाता है ।"

दोनों पक्षों के तर्क सुनने के पश्चात राजा रघु ने निर्णय किया कि "राज्य का कोष प्रमुख रूप से प्रजा को सत्शिक्षा तथा सुसंस्कार प्रदान करने पर खर्च होगा ।" वैसा ही किया गया । परिणामस्वरूप धीरे-धीरे प्रजाजन प्रत्येक दृष्टि से समुन्नत हो गये । पड़ोसी राज्यों को उनके चरित्रबल के समाचार मिलने लगे तो उन्होंने इस राज्य पर कभी भी आक्रमण करने का स्वप्न

तक नहीं देखा । अन्य देशों के समर्थ लोग भी यहाँ आकर बसने लगे । भूमि भी सोना उगलने लगी । हर क्षेत्र में देश समृद्ध होने लगा । इसी के परिणामस्वरूप मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीरामचन्द्रजी का अवतरण रघु राजा के कुल में हुआ ।

[अनुक्रमणिका](#)

बच्चों में बुराई नहीं होती - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

बच्चे जैसा देखते हैं, जैसा सुनते हैं देर-सवेर वैसी दिशा में जाते हैं । गंदी फिल्में देखकर हमारे ऊँचे संस्कार वाले बच्चों के जीवन का हास न हो और उनमें अच्छे संस्कार पड़ें इस हेतु से 'बाल संस्कार केन्द्र' प्रारम्भ हुए ।

वास्तव में बच्चों में बुराई नहीं होती है, बुराई वे देख-देख के, सुन-सुन के सीखते हैं । वास्तव में तो बुद्धि सच्चाई और सज्जनता के पक्ष में ही रहती है । मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि 'बाल संस्कार केन्द्र' में जाने वाले बच्चों को कुछ-न-कुछ सत्संस्कार मिलते हैं । बच्चे माता-पिता का आदर करते हैं, सूर्यनारायण को अर्घ्य देते हैं, तुलसी के पत्तों का सेवन करने से रोगों से बचते हैं और पवित्र संस्कारों के दृढ़ होने पर दुर्गुण-दुराचार से और दुर्गुणी-दुराचारियों के प्रभाव से भी बचते हैं ।

[अनुक्रमणिका](#)

भक्तिदात्री पाँच महान नारियाँ - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

'श्रीमद्भागवत' पाँच महान महिलाओं की बात आती है:

पहली भक्त महिला है द्रौपदी । द्रौपदी भगवान को बोलती है: "प्रभु ! आपको मेरी सहाता में रहना ही पड़ेगा क्योंकि आप मेरे सखा हो, संबंधी हो, मेरे स्वामी भी हो और मेरे सर्वस्व हो । मैं आपको नहीं पुकारूँगी तो किसको पुकारूँगी ? और आप मेरी मदद नहीं करेंगे तो कौन करेगा ?" ऐसी भगवान की भक्त हो गयी द्रौपदी !

दुःख तो भक्त के जीवन में भी आता है लेकिन भक्त के जीवन में दुःख आते हुए भी समत कितनी गजब की होती है ! द्रौपदी के बच्चे अभी जवान भी नहीं हुए थे, सोये पड़े हैं और पाँचों-के-पाँचों की गर्दन काट दी अश्वत्थामा ने । द्रौपदी बहुत दुःखी होने लगी, विलाप करने लगी । अर्जुन और श्रीकृष्ण को बड़ा क्रोध आया । अर्जुन ने द्रौपदी से कहा: "अश्वत्थामा जहाँ

कहीं भी होगा, उसको हम जिंदा पकड़कर लायेंगे और जिंदा हाथ में नहीं आया तो उसकी लाश लायेंगे ।"

अश्वत्थामा तो भागता फिरे लेकिन श्रीकृष्ण और अर्जुन का पौरुष का ऐसा था कि वह पकड़ में आ गया । उसे पकड़कर द्रौपदी के सामने लाये कि "तुम्हारे बच्चों का यह हत्यारा है । निर्दोष बच्चे सोये थे, इसने उनकी गर्दन काट दीं पांडवों का वंश नष्ट करने के लिए । अब हम इसकी गर्दन काटते हैं और इसके सिर पर पैर रखकर तुम स्नान करो और अपना शोक मिटाओ ।" लेकिन द्रौपदी तो भगवान की भक्त है, उसकी सूझबूझ कितनी ऊँची है !

क्या बोलती है - **"मुच्यतां मुच्यातामेष...** छोड़ दो, इसे छोड़ दो । मेरे बच्चे मरे हैं तो मैं रो रही हूँ । अब दंड देने के लिए हम इसे मारेंगे तो इसके मरने पर इसकी माँ - द्रोणाचार्य की पत्नी कृपी रोयेगी । अभी मैं एक नारी रो रही हूँ फिर दूसरी रोयेगी, तो इससे क्या प्राप्त होगा ?"

दंड देने का बल भी है लेकिन सामने वाला दुःखी न हो और अपने दुःख को नियंत्रण में रखकर पचा ले, ऐसा है भगवान की भक्त द्रौपदी का चरित्र !

दूसरी महिला है कुंता देवी । श्रीकृष्ण कहीं जा रहे थे, प्रसन्न होकर कुंता महारानी को पूछा: "कुंता देवी ! कुछ माँगना है तो माँग लो।" कुंता देवी कहती हैं कि "भगवान ! आप अगर प्रसन्न हैं और कुछ देना चाहते हैं तो हमको विपदा दो, कष्ट दो ।"

श्रीकृष्ण: "ऐसा तो दुनिया में कोई माँगता है क्या - हमको विपदा दो, कष्ट दो ।"

कुंता महारानी कहती हैं- "लाक्षागृह में पांडव फँसे थे, कष्ट था, उस समय तथा भीम को विष दिया गया तब भी आपने रक्षा की । दुर्वासा ऋषि के श्राप से बचाने के लिए भी आप आये । दुर्वासा जी ने प्रतिज्ञा की कि 'भोजन नहीं मिलेगा तो श्राप देंगे ।' आपने अक्षयपात्र से एक साग का पत्ता खाकर सबका पेट भर दिया । अर्जुन पर जब शत्रु के बाणों की बहुत अधिक बौछार होने लगती तो आप वहाँ खड़े हो जाते और उनका चित्त मोहकर अपने में लगाते । जब-जब दुःख आये, तब-तब आपका स्मरण हुआ और आपकी कृपा मिली । तो दुःख अच्छा है । दुःख मिलता है तो आपसे प्रार्थना करते हैं, आपकी शरण आते हैं, आपका दर्शन मिलता है और आप हमारी सहायता करते हैं । हमको तो ऐसा दुःख मिले कि आपका बार-बार सुमिरन हो ।"

संत कबीरजी कहते हैं-

सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाय ।

बलिहारी वा दुःख की, जो पल-पल नाम जपाय ॥

यह भागवत में दूसरी महान नारी का चरित्र आता है जो भगवान की स्मृति, भगवान की प्रीति, भगवद्भाव को बढ़ाने के लिए भगवान से दुःख माँगती है । कितनी दिव्य आत्मा है !

तीसरी आर्त महिला है उत्तरा । उत्तरा के गर्भ में बालक था और अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़कर गर्भस्थ शिशु को मारना चाहा । उत्तरा प्रार्थना करती है: "देवाधिदेव ! जगदीश्वर !! आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । आपके अतिरिक्त मुझे अभय देने वाला कोई नहीं है ।"

भगवान बोलते हैं- "क्या तू डरती है ?"

बोली: "नहीं, मैं मर जाऊँ तो कोई आपत्ति नहीं है लेकिन पांडवों का वंशज है मेरे गर्भ में । लोग बोलेंगे कि 'देखो भगवान जिनके साथ मैं थे उनके वंश में कोई पानी देने वाला भी नहीं रहा ।' आपकी पवित्र कीर्ति को कलंक न लगे और आपके भक्त का नाश न हो । मेरे गर्भ के बालक को ब्रह्मास्त्र तो छोड़ेगा और आपके यश के लिए । कृपा कर मेरे गर्भ की रक्षा करें ।"

भगवान बोलते हैं- "उत्तरा ! तो तुम भी मेरे को कुछ दो न !"

उत्तरा: "क्या दूँ ?"

"मैं तुम्हारे गर्भ में आता हूँ । तुम अपने गर्भ में मेरे को जगह दो ।" भगवान के यश और भक्त की रक्षा के लिए अपने प्राण देने को तैयार है उत्तरा, कितनी पवित्र है !

भगवान भी ऐसी माताओं को खोजते हैं कि जो भक्त की रक्षा करना चाहती हैं, भगवान का यश बढ़ाना चाहती हैं, अपनी परवाह नहीं करतीं । ऐसी माताओं के गर्भ में वे भी निवास करना चाहते हैं ।

उत्तरा कहती है: "प्रभु ! जो आपकी मर्जी ।"

भगवान उत्तरा के गर्भ में माया द्वारा प्रवेश कर गये । ब्रह्मास्त्र आया लेकिन भगवान चारों तरफ से गर्भ के रक्षक थे । ब्रह्मास्त्र का तो आदर हो गया लेकिन परीक्षित मरे नहीं । और उन्हीं परीक्षित राजा को 'सात दिन में साँप काटेगा' ऐसा श्राप मिला तो वे भागवत की कथा सुनकर प्रजा के लिए भगवत्कथा का मार्ग खोलकर गये ।

चौथी महान आत्मा का वर्णन आता है - सुभद्रा का । सुभद्रा एक ऐसी महान आत्मा है, ऐसी महान भक्त माता है कि पुत्र अभिमन्यु की मृत्यु होती है तो न भगवान को प्रार्थना करती है, न भगवान को बुलाती है, न रक्षा चाहती है । कितनी विपदा आती है पर भगवान को कुछ बोलती नहीं !

सुभद्रा क्या बोलती है: "कृष्ण सब जानते हैं । वे जो भी करेंगे, हमारे अच्छे के लिए करेंगे । माँ बच्चे का बुरा करती है क्या ? कृष्ण जानते हैं कि विपदाओं में हमारा वैराग्य बढ़ेगा और सम्पदाओं में हमारी सेवा बढ़ेगी । हम क्यों कृष्ण को बोलें कि ऐसा करो, ऐसा करो... ? प्रभु ! जो तुम्हारी मर्जी ! जो तुमको अच्छा लगता है वही मुझे अच्छा लगता है । तुम जो करते हो, अच्छा है ।" निर्गुण भक्त सुभद्रा तो सबसे आगे निकल गयी !

'भागवत' में जिस पाँचवीं सहनशील, परोपकारी महिला की बात आती है, वह है पृथ्वी माता । उसका पुत्र है वृषभ अर्थात् बैल (धर्म का प्रतीक) । उसके चार पैर होते हैं । सतयुग गया तो तपस्वी पैर कट गया । त्रेता गया तो ज्ञान गया और द्वापर गया तो यज्ञरूपी पैर कट गया

। अब वह एक पैर पर खड़ा है । अपने पुत्र के तीन पैर कट गये उसका पृथ्वी देवी को दुःख नहीं है फिर भी वह दुःखी है, क्यों ? क्योंकि पृथ्वी भगवान के रस के बना की (भगवद्-रसविहीन) हो गयी है ।

पृथ्वी कहती है: "लोगों के जीवन में भक्ति का रस नहीं है, प्रेम का रस नहीं है, माधुर्य नहीं है, आत्मसंतोष नहीं है इसलिए मैं दुःखी हूँ । प्रजा सत्य-ज्ञान छोड़ चुकी है, यज्ञ और तप छोड़ चुकी है । दानं केवलं कलियुगे । अब दान का ही चौथा पैर रहा है मेरे पुत्र का । बस भगवान आ जायें, उनकी भक्ति आ जाय, लोगों में प्रीति आ जाय ।" पृथ्वी देवी लोगों के भले के लिए दुःखी होती है ।

अब माताएँ चाहें तो द्रौपदी जैसा भक्ति कर सकती हैं अथवा तो कुंता माँ जैसी विपदाओं में भगवान की स्मृति का वरदान माँग सकती हैं । उत्तरा जैसा उद्देश्य बना सकती हैं । सुभद्रा जैसा - 'भगवान जो करते हैं वाह ! वाह !!' अथवा तो पृथ्वी देवी जैसा 'सबको भगवद् रस मिले, भगवत्शांति मिले, भगवन्माधुर्य मिले ।' - ऐसा ऊँचा चिंतन कर सकती हैं ।

भगवान की महिमा गाकर भक्ति करना प्रारम्भिक है लेकिन 'भगवान सत् हैं, समर्थ हैं और हमारे परम हितैषी हैं । हमारे प्रार्थना करने से वे हमें मदद करते हैं ।' - ऐसा पक्का निश्चय करने से शरणागति सिद्ध हो जाती है । फिर उस साधक-साधिका के जीवन में दिव्य चमत्कार होते हैं, उसे दिव्य सुख मिलता है ।

इन पाँचों महान नारियों के ये दिव्य गुण सभी के लिए पठनीय, मननीय व अनुकरणीय हैं ।

अनुक्रमणिका

माँ की सीख से मोहन को हुए भगवान के दर्शन - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

एक गरीब ब्राह्मण परिवार का लड़का था मोहन । उसके बचपन में ही उसके पिता का स्वर्गवास हो गया था । गरीब ब्राह्मणी ने अपने इकलौते बेटे का गाँव से 5 मील दूर गुरुकुल में प्रवेश करवाया । गुरुकुल जाते समय बीच में जंगल का रास्ता पड़ता था । एक दिन घर लौटने में मोहन को देर हो गयी । वह थोड़ा भयभीत-सा दिख रहा था तो माँ ने कहा: "बेटा ! क्यों डरता है ?"

मोहन: "माँ ! अँधेरा हो गया था । हिंसक प्राणियों की भयानक आवाजें आ रहीं थीं इसलिए बड़ा डर लग रहा था ।"

"तू अपने भाई को बुला लेता...!"

"माँ ! मेरा कोई भाई भी है क्या ?"

"हाँ-हाँ बेटा !"

"कहाँ है ?"

"जहाँ से बुलाओ, वहीं आ जाता है ।"

"मेरे भाई का नाम क्या है माँ ?"

"बेटा ! तेरे भाई का नाम है 'गोपाल' । परंतु कोई उसको गोविंद बोलता है, कोई कृष्ण तो कोई केशव.... । जब भी डर लगे तब तू 'गोपाल भैया ! गोपाल भैया !....' कह के उसको पुकारना तो वह आ जायेगा ।"

दूसरे दिन भी गुरुकुल से लौटते समय देर हो गयी तो जंगल में मोहन को डर लगा । उसने पुकारा: "गोपाल भैया ! गोपाल भैया ! आ जाओ न, मुझे डर लग रहा है.... ।"

इतने में मोहन को बड़ा ही मधुर स्वर सुनाई दिया: "भैया ! तू डर मत । मैं यह आया ।"

गोपाल भैया का हाथ पकड़कर मोहन निडर हो के चलने लगा । जंगल की सीमा तक मोहन को लौटाकर गोपाल लौटने लगे ।

मोहन: "गोपाल भैया ! घर चलो ।"

गोपाल: "नहीं भैया ! मुझे और भी काम हैं ।"

घर जाकर मोहन ने माँ को सारी बात बतायी । माँ समझ गयी कि जो दयामय प्रभु दौपदी और गजेन्द्र की पुकार पर दौड़ पड़े थे, मेरे भोले, निर्दोष और दृढ़ श्रद्धा वाले बालक की पुकार पर भी वे ही आये थे।

अब मोहन वन में पहुँचते ही गोपाल भैया को पुकारता और वे झट आ जाते । एक दिन गुरुकुल में सारे बच्चे और कुछ शिक्षक उपस्थित हुए । गुरुजी के यहाँ दूसरे दिन श्राद्ध था । कौन बच्चा इस निमित्त क्या लायेगा - इस पर बातचीत हो रही थी ।

किसी ने शक्कर तो किसी ने चावल, मेवा लाने की बात की । मोहन गरीब था, फिर भी उसने कहा: "गुरु जी ! गुरु जी ! मैं दूध लाऊँगा ।"

मोहन ने घर जा के गुरु जी के यहाँ श्राद्ध की बात बतायी ।

गरीब माँ कहाँ से दूध लाती ? माँ ने कहा: "बेटा ! गोपाल भैया से दूध माँग लेना, वे ले आयेंगे ।"

दूसरे दिन मोहन ने जंगल में जाते ही गोपाल भैया को पुकारा ।

गोपाल आये और उन्होंने मोहन के हाथ में दूध से भरा लोटा दे दिया ।

मोहन लोटा लेकर गुरुकुल पहुँचा और बोला: "गुरु जी ! गुरु जी ! गोपाल भैया ने दूध भेजा है ।"

गुरु जी व्यस्त थे, सामने तक न देखा ।

थोड़ी देर बार फिर मोहन बोला: "गुरु जी ! दूध लाया हूँ । गोपाल भैया ने दिया है ।"

गुरु जी ने सेवक को कहा: "सेवक ! ले जा । जरा सा दूध लाया है और सिर खपा दिया । जा, इसका लोटा खाली कर दे !"

सेवक लोटा ले गया । खाली बर्तन में दूध डाला । बर्तन भर गया । दूसरे बर्तन में डाला, वह भी भर गया । जितने बर्तनों में दूध डालता, बर्तन भर जाते पर लोटा खाली न होता । सेवक चौंका । उसने जाकर गुरु जी को बताया ।

गुरु जी: "कहाँ से लाया है यह अक्षयपात्र ?"

मोहन: "एक मेरे गोपाल भैया हैं, उनसे माँगकर लाया हूँ । मेरी पुकार सुनकर ही वे आ जाते हैं ।"

"तेरी आवाज सुनकर तेरे गोपाल भैया कैसे आ जाते हैं ?"

"मेरी माँ ने बताया था कि कोई यदि प्रेम से और विश्वास से उसको पुकारे, ध्यान करे तो वह प्रकट हो जाता है ।" उसने प्रारम्भ से सारी घटना बतायी ।

गुरु जी ने मोहन को प्रणाम किया और कहा: "मोहन ! मुझे भी ले चल, अपने गोपाल भैया के दर्शन करा ।"

मोहन: "चलिये गुरु जी !"

श्राद्ध-विधि पूरी होने के बाद गुरु जी मोहन के साथ चले । रास्ते के जंगल में मोहन ने आवाज लगायी: "गोपाल भैया ! गोपाल भैया ! आ जाओ न !"

मोहन को आवाज सुनाई दी: "आज तुम अकेले तो हो नहीं, डर तो लगता नहीं, फिर मुझे क्यों बुलाते हो ?"

मोहन: "डर तो नहीं लगता लेकिन मेरे गुरु जी तुम्हारे दर्शन करना चाहते हैं ।"

गोपाल: "वे मेरा तेज सहन नहीं कर सकेंगे । तेरी माँ तो बचपन से भक्त थी, तू भी बचपन से भक्ति करता है । तुम्हारे गुरु जी ने इतनी भक्ति नहीं की है । उनसे कहो कि 'जो प्रकाश पुंज दिखेगा, वे ही गोपाल-भैया हैं ।"

मोहन ने आकर कहा: "देखिये गुरु जी ! गोपाल भैया खड़े हैं ।"

गुरु जी: "मेरे को नहीं दिखते, केवल प्रकाश दिखता है ।"

मोहन: "हाँ, वे ही हैं, वे ही हैं गोपाल भैया !"

गुरु जी का रोम-रोम आनंदित हो उठा । अब तो गुरु जी मोहन को अपना गुरु मानने लगे क्योंकि उसी ने भगवद्दर्शन का रास्ता बताया । आप भी बच्चों को ऐसे ही संस्कार दें । उनके भावों को ऐसी दिव्यता से भर दें कि 'बच्चो ! तुम भी मोहन की नाई भगवन्नाम जपते जाओ । गोपाल भैया तुम पर भी प्रसन्न हो जायेंगे । स्वप्न में भी दर्शन दे देंगे । बच्चों पर तो वे जल्दी खुश होते हैं । तुम भी भगवान के साथ सेवक, स्वामी, सखा, भैया के भाव से कोई भी से संबंध जोड़कर प्रेम से उन्हें पुकारोगे तो तुम्हारे हृदय में भी आनंद प्रकट हो जायेगा ।

[अनुक्रमणिका](#)

सत्संग से ही संस्कारों की प्राप्ति - श्री उड़िया बाबा जी

अच्छे व्यक्तियों का संग करके मानव अनेक सदगुणों से युक्त होता है जबकि दुर्व्यसनी एवं दुष्टों का संग करके वह कुमार्गी बन जाता है। सत्पुरुषों या संतों अथवा परमात्मा के संग को सत्संग कहते हैं। संत-महात्मा तथा विद्वान हमेशा लोक-परलोक का कल्याण करने वाली बातें बताकर लोगों को संस्कारित करते हैं जबकि व्यसनी अपने पास आने वाले को अपनी तरह के व्यसन में लगा के उसका लोक-परलोक बिगाड़ देते हैं। इसीलिए धर्मशास्त्रों में कहा गया है कि भूलकर भी व्यसनी, निंदक, नास्तिक तथा कुमार्गी का एक क्षण का भी संग नहीं करना चाहिए।

आदर्श माता-पिता वे हैं जो अपनी संतान को सदाचार, सत्याचरण और धर्माचरण के संस्कार देते हैं। जब से हमने संतानों को ऐसे संस्कार देने बंद किया है, तभी से पतन शुरू हुआ है। अतः संस्कारों पर विशेष बल दिया जाना जरूरी है।

हमारी माताएँ तथा संत बालक-बालिकाओं एवं युवक-युवतियों को पग-पग पर सत्प्रेरणा देते रहते थे। संध्या के समय भोजन नहीं करना चाहिए, भोजन के समय बोलना नहीं चाहिए, भोजन से पहले हाथ-पैर धोने चाहिए, पवित्र स्थान में पूर्वाभिमुख होकर भोजन करना चाहिए, तामस भोजन सर्वदा वर्जनीय है - जैसी प्रतिदिन की बातें हमें संस्काररूप में ज्ञात हो जाती थीं किंतु अंग्रेजी भाषा के कुप्रभाव ने तथा भौतिक सुखों की बढ़ती चाह ने हमारी युवा पीढ़ी को संस्कारहीन बना दिया है। इसीलिए बालक-बालिकाओं को, युवक-युवतियों को देववाणी संस्कृत की शिक्षा दिलानी चाहिए। उन्हें विदेशी भाषा एवं वेशभूषा तथा विदेशी खानपान के मोह से दूर रखने के प्रयास किये जाने चाहिए।

सत्संग से ही संस्कारों की प्राप्ति होती है। सत्संग करने से भगवत्प्राप्ति का मार्ग दिखलाई पड़ता है। जिस मार्ग से सत्पुरुष गये हैं, उसी मार्ग पर चले बिना हमें भगवत्प्राप्ति का मार्ग नहीं मिल सकता। दुर्व्यसनी के कुछ पल के संग से हमारे संचित सुस्संस्कार तक लुप्त हो जाते हैं और वह हमें सहज ही में दुर्व्यसनों की ओर आकर्षित करने में सफल हो जाता है। अतः दुर्व्यसनी, नास्तिक तथा हर समय सांसारिक प्रपंचों में फँसे रहने वाले व्यक्ति का संग भूलकर भी नहीं करना चाहिए।

अनुक्रमणिका

अपनी संतानों को महान बनाने के लिए

'आपस्तम्ब गृह्यसूत्र' में लिखा है:

स हि विद्यातः तं जनयति तदस्य श्रेष्ठं जन्म ।

मातापितरौ तु शरीरमेव जनयतः ॥

'माता पिता शरीर को जन्म देते हैं किन्तु सत्य जन्म गुरु (सद्गुरु) से होता है, जिसे शास्त्रकारों ने श्रेष्ठ जन्म कहा है।'

संत एकनाथ जी कहते हैं- "माता-पिता का साथ तो केवल एक ही जन्म का होता है और ये हमें जन्म-मरण से मुक्त नहीं कर सकते लेकिन गुरु-तत्त्व तो जब तक शिष्य मुक्त नहीं होता तब तक पीछा नहीं छोड़ता । अतः गुरु माँ-बाप से भी बड़े हैं ।

गुरु ही माता, पिता, स्वामी और कुलदेवत हैं । गुरु ही भगवान, गुरु ही परब्रह्म और गुरु-भजन ही भगवद्-भजन है । गुरु और भगवान एक ही हैं, यही नहीं प्रत्युत 'गुरु वाक्य' ही ब्रह्म का प्रमाण है अन्यथा ब्रह्म केवल एक शब्द है ।"

महान गुरुभक्त सहजोबाई के गुरुदेव संत चरनदास जी महाराज कहते हैं कि "मैं तो बुरे-से-बुरा था पर मेरे सद्गुरु शुकदेव जी ने मुझ पर कृपा करके मेरा बेड़ा पार कर दिया ।

किसू काम के थे नहीं, कोई न कौड़ी देह ।

गुरु शुकदेव कृपा करी, भई अमोलक¹ देह ॥

पितु सँ माता सौ गुना, सुत को राखै प्यार ।

मन सेती² सेवन करै, तन सँ डाँट अरु गार³ ॥

मात सँ हरि सो गुना, जिन से सौ गुरुदेव ।

प्यार करें औगुन हरेँ, चरनदास शुकदेव ॥

1. अनमोल 2. से 3. माली

पिता से माता बच्चे को सौ गुना अधिक प्यार करती है । मन से उसको चाहते हुए भी उसकी भलाई के लिए बाहर से डाँटती एवं कटु शब्द बोलती है, ऐसे ही माता से भी दस हजार गुना अधिक प्यार देने वाले सद्गुरु मन से तो स्नेह करते हैं और बाहर से डाँटते हैं । इसलिए हे साधक ! उनकी डाँट तेरा हित करेगी । कभी भी अपने सद्गुरु से कतराना नहीं, गुरु से दूर जाना नहीं । गुरु के प्रसाद को पावन अंतःकरण में ठहराये बिना रुकना नहीं ।

पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू की पावन अमृतवाणी में आता है: "भगवान ने जीव करके पैदा किया लेकिन सद्गुरु ने जीव से अपने मूल ब्रह्मभाव में जगाकर सदा के लिए मुक्त कर दिया । माँ-बाप देह में जन्म देते हैं लेकिन सद्गुरु उस देह में रहे हुए विदेही का साक्षात्कार कराके परब्रह्म-परमात्मा में प्रतिष्ठित कराते हैं, अपने आत्मा की जागृति कराते हैं ।"

संत सूरदास जी की वाणी में आता है:

गुरु मात गुरु तात, गुरु बंधु निज गात ।....

फिरि घाट घड़ि करि, मोहि निस्तारयो है ॥

मेरे तो गुरु ही माता हैं, गुरु ही पिता हैं, गुरु ही बंधु हैं । मेरे शरीर के पाँव के नाखून से लेकर सिर तक गुरुदेव ने ही मुझे सँवारा है । पहले तो सद्गुरु ने दिव्य चक्षु दिये, फिर मुख में

उस रहस्य को बोल पाने की वाणी दी । गुरुदेव ने ही दिव्य कान देकर अपना शब्द सुनाया है । गुरुदेव ने ही हाथ, पाँव, सिर आदि दिये और प्रभु-प्रेम करना भी सिखाया है ।

गुरुदेव ने ही मेरे शरीर में, जो मरा हुआ-सा जीवन जीने वाला था, प्राण डाले हैं । आगे सुंदरदास जी कहते हैं कि कृपालु गुरुदेव ने इस घट को गढ़कर मेरा उद्धार भी किया है ।

कहाँ तक वर्णन करें, ब्रह्मज्ञानी सद्गुरु की महिमा तो लाबयान है ! इसलिए भगवान शिवजी कहते हैं-

धन्या माता पिता धन्यो गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।

धन्या च वसुधा देवि यत्र स्याद् गुरुभक्तता ॥

'जिसके अंदर गुरु भक्ति हो उसकी माता धन्य है, उसका पिता धन्य है, उसका वंश धन्य है, उसके वंश में जन्म लेने वाले धन्य हैं, समग्र धरती माता धन्य है !'

सद्गुरु परम कल्याणकर्ता माता-पिता हैं । अतः सभी देवियों, माताओं को चाहिए कि वे सहजोबाई, मीराबाई, आनंदमयी माँ की तरह सद्गुरु के सत्संग का लाभ लें एवं अपनी संतानों को भी गुरुभक्ति के संस्कारों से सम्पन्न कर दें, जिससे वे मनुष्य जीवन के वास्तविक लक्ष्य ईश्वरप्राप्ति तक पहुँच सकें ।

[अनुक्रमणिका](#)

माता-पिता व सद्गुरु की महिमा

धर्मराज युधिष्ठिर ने भीष्म जी से पूछा: "पितामह ! धर्म का रास्ता बहुत बड़ा है और उसकी अनेक शाखाएँ हैं । उनमें से किस धर्म को आप सबसे प्रधान एवं विशेष रूप से आचरण में लाने योग्य समझते हैं, जिसका अनुष्ठान करके मैं इस लोक व परलोक में भी धर्म का फल पा सकूँगा ?"

भीष्म जी ने कहा:

"मातापित्रोर्गुरुणां च पूजा बहुमता मम ।

इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते ॥

'राजन ! मुझे तो माता-पिता तथा गुरुओं की पूजा ही अधिक महत्त्व की वस्तु जान पड़ती है । इस लोक में इस पुण्यकर्म में संलग्न होकर मनुष्य महान यश और श्रेष्ठ लोक पाता है ।' (महाभारत, शांति पर्व: 108.3)

दस श्रोत्रियों (वेदवेत्ताओं) से बढ़कर है आचार्य (कुलगुरु), दस आचार्यों से बड़ा है उपाध्याय (विद्यागुरु), दस उपाध्यायों से अधिक महत्त्व रखता है पिता और दस पिताओं से भी अधिक गौरव है माता का । माता का गौरव तो सारी पृथ्वी से भी बढ़कर है । मगर आत्मतत्त्व का उपदेश देने वाले गुरु का दर्जा माता-पिता से भी बढ़कर है । माता-पिता तो केवल इस शरीर

को जन्म देते हैं किंतु आत्मतत्त्व का उपदेश देने वाले आचार्य (सद्गुरु) द्वारा जो जन्म होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है ।

यश्चावृणोत्यवितथेन कर्मणा ऋतं ब्रुवन्ननृतं सम्प्रयच्छन् ।

तं वै मन्येत पितरं मातरं च तस्मै न द्रुहयेत् कृतमस्य जानन् ॥

'जो सत्य-कर्म (और यथार्थ उपदेश) के द्वारा पुत्र या शिष्य को कवच की भाँति ढक लेते हैं, सत्यस्वरूप वेद का उपदेश देते हैं और असत्य की रोकथाम करते हैं, उन गुरु को ही पिता और माता समझे और उनके उपकार को जानकर कभी उनसे द्रोह न करे ।' (महाभारत, शांति पर्व: 108.22)

जिस व्यवहार से शिष्य अपने गुरु को प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म-परमात्मा की पूजा सम्पन्न होती है इसलिए गुरु माता-पिता से भी अधिक पूजनीय हैं । गुरुओं के पूजित होने पर पितरों सहित देवता और ऋषि भी प्रसन्न होते हैं इसलिए गुरु परम पूजनीय हैं ।

जो लोग मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरु, पिता व माता से द्रोह करते हैं, उन्हें गर्भहत्या का पाप लगता है, जगत में उनसे बढ़कर और कोई पापी नहीं है । अतः माता, पिता और गुरु की सेवा ही मनुष्य के लिए परम कल्याणकारी मार्ग है । इससे बढ़कर दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है । सम्पूर्ण धर्मों का अनुसरण करके यहाँ सबका सार बताया गया है ।" (महाभारत के शांति पर्व से)

क्या अपना कल्याण चाहने वाले आज के विद्यार्थी, युवक-युवतियाँ भीष्म जी के ये शास्त्र-सम्मत वचन बार-बार विचारकर अपना कल्याण नहीं करेंगे ! 'गर्भहत्याओं की कतार में आना है या श्रेष्ठ पुरुष बनना है ?' - ऐसा अपने-आपसे पूछा करो । अब भी समय है, चेत जाओ ! समय है भैया !... सावधान !!

तीरथ नहाये एक फल, संत मिले फल चार ।

सद्गुरु मिले अनंत फल, कहत कबीर विचार ॥

ऐसे सद्गुरुओं का सत्संग पाकर अनंत पद में प्रवेश करो तो आपकी सात पीढ़ियाँ भी तर जायेंगी ।

[अनुक्रमणिका](#)

बच्चों में अच्छे संस्कार डालना यह हम सबका कर्तव्य है - पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू

हमारे भारत के बच्चे-बच्चियों के साथ बड़ा अन्याय हो रहा है । अश्लील चलचित्रों, उपन्यासों द्वारा उनके साथ बड़ा अन्याय किया जा रहा है । फिर भी हमारे बच्चे-बच्चियाँ अन्य देशों के युवक-युवतियों की अपेक्षा बहुत अच्छे हैं, परिश्रमी हैं । कष्ट सहते हैं, देश-विदेश में

जाकर बेचारे रोजी-रोटी कमा लेते हैं, दूसरे देशों के युवक-युवतियों की तरह विलासी नहीं हैं । यह सब उनके माँ-बाप की तपस्या है । माँ-बाप जिनका सान्निध्य-सेवन करते हैं उन संतों की तपस्या और हमारी भारतीय संस्कृति के प्रसाद की महिमा है । यह ऐसा प्रसाद है कि सब दुःखों को सदा के लिए मिटाने की ताकत रखता है । यह कहीं जा के, किसी को हटा के, किसी को पा के दुःख नहीं मिटाता । 'कुछ मिल जाय तब दुःख मिटे, कुछ हट जाय तब दुःख मिटे....' नहीं । भारतीय संस्कृति का ज्ञान-प्रसाद तो इतना निराला है कि आप चाहे जैसी परिस्थिति में हैं, वह आपको सुखी बना देता है, हर परिस्थिति में निर्दुःख होने की युक्ति सिखा देता है । मगर दुर्भाग्य है कि हमारे देशवासी पाश्चात्य कल्चर के प्रभाव में आकर अपने साथ, अपने बच्चों के साथ अन्याय कर बैठते हैं ।

अपने व बच्चों के जीवन को सत्संग-ज्ञान से सम्पन्न बनायें

दिल्ली में मेरे सत्संग में एक पुलिस अफसर आया था । उसके दोनों बच्चों को देखकर मुझे तरस आया । मैंने कहा कि "इनका विकास नहीं होगा, इनके पेट में तकलीफ है ।"

बोला: "चॉकलेट खाते हैं ।"

मैंने कहा: "इतनी चॉकलेट क्यों खिलाते हो ? चॉकलेट, फास्ट फूड से कितनी-कितनी हान होती है, पेट की खराबी होती है !"

बस, पैसे मिल गये, अधिकार मिल गया तो खिलाओ, बच्चे हैं.... । बच्चों से पूछते हैं- "क्या चाहिए बेटे ?" बच्चे टी.वी. में देखते रहते हैं तो बोल देते हैं- 'यह चाहिए, वह चाहिए..... ।' इससे बच्चों का स्वास्थ्य और हमारे भारत की गरिमा बिगड़ रही है । बच्चों का माँ बाप के प्रति सद्भाव नहीं रहा । यह कॉन्वेंट स्कूलों में पढ़ाई का परिणाम है । अगर माँ-बाप के जीवन में सत्संग नहीं है तो जो सूझबूझ चाहिए उससे माँ-बाप भी वंचित हो जाते हैं । अज्ञानता, विषय-विकार बढ़ाने में अथवा अधिकारलोलुप होकर संघर्ष करने में वास्तविक सुख का, ज्ञान का निवास नहीं है । एकत्व के ज्ञान से ही सारी समस्याओं का समाधान है । यह ज्ञान गुरुकुलों में मिलता है ।

अनुक्रमणिका

जहरीले संस्कारों से बचायें, धर्म-संस्कृति के प्रति निष्ठा जगायें

कॉन्वेंट स्कूलों में बच्चों को हिन्दू साधुओं के प्रति नफरत करना सिखाया जाता है । हिन्दू देवी-देवताओं को नीचा दिखाते हैं, हनुमान जी को बंदर साबित कर देते हैं । पूँछ वाले किसी जानवर का चित्र बनाते हैं और बच्चों से पूछते हैं कि 'यह क्या है ?' बच्चे कहते हैं- 'जानवर ।'

'कैसे ?'

'क्योंकि इसको पूँछ है ।'

फिर हनुमान जी का चित्र बनाते हैं । बोलते हैं- 'देखो, यह भी जानवर है ।' बच्चों में ऐसे जहरीले संस्कार डाल देते हैं । वे ही बच्चे जब बड़े अधिकारी बनते हैं तो हिन्दू होते हुए भी हिन्दू साधुओं के लिए हिन्दू धर्म और हिन्दू शास्त्रों के लिए उनके मन में नफरत पैदा हो जाती है, इसलिए बेचारे शराबी हो जाते हैं । शराब पीने से बुद्धि मारी जाती है, फिर न पत्नी का मन सँभाल सकते हैं न माँ-बाप का । ऐसे कई युवकों को मैं जानता हूँ । एक व्यक्ति मेरे पास आया और रोते हुए बोला कि 'मेरी लड़की ने ग्रेजुएशन किया, 30000 रुपये की सर्विस थी और जिससे शादी की उस लड़के की भी 35000 रुपये की सर्विस थी । 42 लाख रुपये शादी में खर्च किये लेकिन बाबा ! बेटी को चार महीने का गर्भ है और उसको लाकर घर पर छोड़ दिया ।'

क्योंकि पढ़ाई ऐसी थी कि खाओ-पियो-मौज करो । और भी कड़ियों को देखा है । एक व्यक्ति, वह खुद तो किसी कम्पनी में मैनेजर है, पत्नी भी मैनेजर , 12-15 लाख रुपये वह भी कमाती है । फिर भी दुःखी हैं क्योंकि उन्हें शिक्षा ही उलटी मिली है, संस्कार ही भोगों के मिले हैं- 'दूसरों का कुछ भी हो, खुद को मजा आना चाहिए ।' बाहर का मजा लेने के जो संस्कार हैं ,वे अंदर के मजे से वंचित कर देते हैं और पाशवी वृत्तियाँ जगाते हैं ।

अनुक्रमणिका

यह पूँजी आपको लाडलों को हर क्षेत्र में सफल बनायेगी

जिन बच्चों को बचपन में ही अच्छे संस्कार मिले हैं, ऐसे बच्चों के लिए बाहरी सुख-सुविधा के साधन उतना मायने नहीं रखते । वे जैसी भी परिस्थिति में रहते हैं, स्वयं तो संतुष्ट व प्रसन्न रहते हैं, उनके सम्पर्क में आने वालों को भी उनसे कुछ-न-कुछ सीखने को मिल जाता है । हम अपने बच्चों को धन न दे सकें तो कोई बात नहीं, बड़े-बड़े बँगले, कोठियाँ, गाड़ियाँ, बैंक बैलेंस न दे सकें तो कोई बात नहीं परंतु अच्छे संस्कार जरूर दें । अगर आपने अपने बच्चों को अच्छे संस्कारों से सम्पन्न बना दिया तो समझो आपने उन्हें बहुत बड़ी सम्पत्ति दे दी, बहुत बड़ी पूँजी का मालिक बना दिया । यह अच्छे संस्कारों की पूँजी आपके लाडलों को जीवन के हर क्षेत्र में सफल बनायेगी, यहाँ तक कि लक्ष्मीपति भगवान से भी मिलने के योग्य बना देगी । बच्चों के मन में अच्छे संस्कार डालना यह हम सबका कर्तव्य है, इसमें हमें प्रमाद या लापरवाही नहीं करनी चाहिए।

अनुक्रमणिका

माता-पिता के करे सपने साकार

दिव्य शिशु संस्कार

इस पुस्तक में आप पायेंगे : * उत्तम एवं तेजस्वी संतान प्राप्त करने के उपाय * गर्भस्थ शिशु पर संस्कारों का प्रभाव * गर्भ में ही बच्चों को कैसे बनायें सुसंस्कारी * गर्भाधान के पूर्व की सावधानियाँ एवं कर्तव्य * माता-पिता काले वर्ण के हों तो भी संतान गौरवर्ण लाने का उपाय * तीव्रबुद्धि संतान प्राप्त करने के उपाय * मासानुसार गर्भिणी परिचर्या * सगर्भावस्था के आहार-विहार की जानकारी * सुखपूर्वक प्रसवकारक प्रयोग * बिना ऑपरेशन सामान्य प्रसूति के अनुभूत प्रयोग ।

प्राप्ति-स्थान : संत श्री आशारामजी आश्रम व समिति के सेवाकेन्द्र ।

सुखी, स्वस्थ और सम्मानित जीवन का आधार

ऋषि प्रसाद

पढ़ें और पढ़ायें देश-विदेश में करोड़ों पाठक

हिन्दी, गुजराती, मराठी, ओड़िया, तेलुगु, कन्नड़, अंग्रेजी, सिंधी (देवनागरी) व बंगाली भाषाओं में प्रकाशित सम्पर्क : 'ऋषि प्रसाद', संत श्री आशारामजी आश्रम, सावरमती, अहमदाबाद-५. दूरभाष : (०७९) ३९८७७७४२, २७५०५०१०-११.

'ऋषि प्रसाद' की ई-मैगजीन तथा मुद्रित प्रति के ऑनलाइन सदस्य बनने के लिए लॉग ऑन करें : www.rishiprasad.org
Email : ashramindia@ashram.org Website : www.ashram.org

पूज्य बापूजी के जीवन, उपदेश और योगलीलाओं पर आधारित

ऋषि दर्शन

इसमें आप पायेंगे पूज्यश्री के सारभूत सत्संग, पर्व-महिमा, पुण्यदायी तिथियाँ, स्वास्थ्य की कुंजियाँ, दुर्लभ लीलाएँ एवं और भी बहुत कुछ...

आध्यात्मिक मासिक विडियो मैगजीन ऑनलाइन सदस्यता हेतु लॉग ऑन करें : www.rishidarshan.org
पता : संत श्री आशारामजी आश्रम, सावरमती, अहमदाबाद-०५. दूरभाष : (०७९) ३९८७७७७७-८८. Email : contact@rishidarshan.org

लोक कल्याण सेतु

मासिक समाचार पत्र (हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा ओड़िया भाषाओं में प्रकाशित)

'लोक कल्याण सेतु' की ई-मैगजीन तथा मुद्रित प्रति के ऑनलाइन सदस्य बनने के लिए लॉग ऑन करें : www.lokkalyansetu.org
Email : lokkalyansetu@ashram.org दूरभाष : (०७९) ३९८७७७३९/८८.

माँ ! तू कितनी महान.....

माता अँजना देवी बचपन में हनुमान जी को पुराणों की कथाएँ, आदर्श पुरुषों व भगवान के अवतारों के चरित्र सुनाती थीं। इसका प्रभाव हनुमान जी के जीवन में महानता के रूप में प्रकटा ।

माता श्री झाली जी (वीर कुँवरी जी) ने सगर्भावस्था में नौ मास तक श्रीमद्भागवत की कथा सुनी, जिसका प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ा और वही सुपुत्री महान कृष्णभक्त मीराबाई के नाम से जानी गयीं ।

माता जीजाबाई बाल शिवाजी को धार्मिक कहानियाँ सुनाती थीं । धर्म, राजनीति, संस्कृति, इतिहास, दर्शन तथा नैतिकता की शिक्षा देती थीं । इसी शिक्षा ने बाल शिवाजी को हिन्दू स्वराज्य के निर्माता एवं गुरुभक्त छत्रपति शिवाजी महाराज बना दिया ।

माता भुवनेश्वरी देवी नरेन्द्र को वीरतापूर्ण पौराणिक कथाएँ, रामायण, महाभारत आदि सुनाती थीं । उसी का प्रभाव रहा कि विवेकानंद जी श्री रामकृष्ण परमहंस जी की पूर्ण कृपा को पचाकर पूर्णत्व को उपलब्ध हुए और देश-विदेश में भारतीय संस्कृति का प्रचार-प्रसार किया ।

माता रुक्मिणी के सान्निध्य में बालक विनायक ने भगवद्भक्ति, जप, प्रार्थना के संस्कार पाये । उन संस्कारों को जीवन में उतारकर विनायक संत विनोबाजी के नाम से सुप्रसिद्ध हो गये ।

माँ प्रभावती शिबू को मंदिर ले जाती थीं, उसे संतों-महापुरुषों की निष्काम समाज-सेवा की कहानियाँ सुनाती थी । इससे प्रेरित हो शिबू ने राष्ट्रसेवा का व्रत लिया और वे ही नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के नाम से सुविख्यात हुए ।

पुतलीबाई की धर्मनिष्ठा, व्रत-परायणता आदि सद्गुणों ने ही गांधी जी को दृढ़व्रती, साहसी व सत्यव्रती बनाया ।

मातु श्री माँ महँगीबा जी ने अपने बालक आसुमल में भगवान की प्रेमाभक्ति एवं अंतर्दयामीपना, भक्तवत्सलता तथा मन की निर्मलता, सरलता, परदुःखकातरता आदि सद्गुणों का बड़ी ही कुशलता से सिंचन किया । सिंचन क्या किया, मानो एक विश्वहितकारी, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष पूज्य संत श्री आशाराम जी बापू रूपी वरदान ही हमें दिया ।

